शोधादर्श

७४

उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले में स्थित
भ. महावीर की निर्वाण भूमि पावानगर में निर्मित मन्दिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भगवान महावीर

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक	:	(स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक	:	डॉ. शशि कान्त जैन
सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री सन्दीप कान्त जैन
	:	श्री अंशु जैन 'अमर'
	:	डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ - २२६ ००४, टेलीफोन सं. (०५२२) २४५१३७५

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्व है

शोधादर्श -७४

वीर निर्वाण संवत् २५३७ **नवम्बर, २०११ ई.**

विषय क्रम

१.	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	३
२.	गुरुगुण-कीर्तन : कविवर श्री भूधरदास	श्री रमा कान्त जैन	४-८
३.	जाति और धर्म	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	९-१२
४.	श्राद्ध-पर्व दीपावली	श्री अजित प्रसाद जैन	१३-१४
५.	इतिहास के प्रति जैन दृष्टि	डॉ. शशि कान्त जैन	१५-३६
६.	जिज्ञासा - देह दान	श्री नेमिचन्द जैन	३६
७.	भ. शीतलनाथ की जन्म-भूमि मलय-भद्रपुर	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	३७-३९
८.	क्षमावणी पर्व की सार्थकता	श्रीमती इन्दु कान्त जैन	४०-४१
९.	लखनऊ के जैन साहित्यकार	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	४२-४५
१०.	आभार		४५
११.	समायोजन और अध्यात्म	श्री वीरेन्द्र कुमार जैन	४६-४८
१२.	जैन प्रतीक चिह्न	श्री ललित कुमार नाहटा	४९-५०

१३. समण सुत्तं : मूल स्रोत और अनुवाद — डॉ. शशि कान्त जैन — ५१-५५
१४. मन को किया तितली-तितली (पद्य) — बेबी संचिता मित्तल — ५६
१५. वीतराग स्वरूपं (पद्य) — डॉ. ज्योति प्रसाद जैन — ५७
१६. करुणा का उपदेश (पद्य) — श्री फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' — ५८
१७. सामयिक परिदृश्य (पद्य) — डॉ. परमानन्द जड़िया — ५९
१८. विविध-विविधा (पद्य) — श्री अंशु जैन 'अमर' — ६०
१९. लड़ता कब तक (पद्य) — श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश' — ६१
२०. शीतकाल (पद्य) — श्री अजित कुमार वर्मा — ६२
२१. दीप धरे (पद्य) — श्री अमरनाथ — ६३
२२. साहित्य सत्कार : — डॉ. शशि कान्त जैन — ६४-६८
Jaina Archaealogy outside India; प्राकृत विज्ञान बालपोथी;
पाइउविन्नाणकहा; बोधप्रदीप पंचाशिका; प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतककाव्यम्;
पुण्यचरितमहाकाव्यम्; सर्वोदय से सूर्योदय; जैन तीर्थंकर निर्वाण तीर्थ;
मिले मन भीतर भगवान; अध्यात्मवाणी;
रूक्मिणी हरण; बालक ध्रुव; भजन-मणिमाला; हीरक माला;
आपका आरोग्य आपके पास; लड़कियां दस्तक देती हैं;
जैन सम्वाद
२३. समाचार विविधा : — श्री नलिन कान्त जैन — ६९-७५
पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी
श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद
पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (मंगल टीका) अनुशीलन
लखनऊ में राष्ट्रीय विद्वत महा सम्मेलन
ला. द. संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद
भगवान महावीर के प्रति श्रद्धांजलि
२४. शोक संवेदन — ७५
२५. अभिनन्दन — ७६
२६. पाठकों के पत्र : — ७७-८०
श्री अमर नाथ, डॉ. ए. एल श्रीवास्तव,
श्री कैलाशनारायण टण्डन, श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध',
श्री पुखराज जैन, श्री बी. डी. अग्रवाल,
श्री एम. पी. जैन, श्री० रवीन्द्र कुमार 'राजेश',
श्री विष्णुदत्त शर्मा

सम्पादकीय

भगवान महावीर का निर्वाण कार्तिक कृष्ण अमावस्या को हुआ था। इस वर्ष यह तिथि २६ अक्टूबर को पड़ी। भगवान महावीर की निर्वाण स्थली पावा के सम्बन्ध में **शोधादर्श**-७१ में गतवर्ष हम ने श्री अजित प्रसाद जैन और डॉ. शिव प्रसाद के लेख प्रकाशित किये थे। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण संस्थान ने सन् १८७६-७७ में ही भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावा को कुशीनगर जिले में कुशीनगर से १२ मील दक्षिण पूर्व फाजिल नगर साठियांवडीह के विस्तृत क्षेत्र में फैले प्राचीन टीलों के रूप में चिन्हित किया था। डॉ० शिव प्रसाद ने अपने लेख 'तथाकथित वीर निर्वाण भूमि 'पावा' की प्राचीनता' में प्रामाणिक रूप से यह स्पष्ट किया कि नालन्दा जिले में स्थित पावापुरी की मान्यता १२वीं शताब्दी से पूर्वतर नहीं जाती और यह **कल्पसूत्र** में उल्लिखित राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला वाली पावा नहीं हो सकती। छठी शताब्दी से पूर्वी भारत में जैनों की संख्या कम होती गई और पाल तथा सेन राजवंशों के शासनकाल में क्रमशः बौद्ध एवं वैदिक धर्मावलम्बियों को प्रश्रय दिया गया जिस परिस्थिति में उस क्षेत्र से जैन धर्मावलम्बी प्रायः प्रभावशून्य हो गये और अपने प्राचीन तीर्थ स्थानों की पहचान भी नहीं बनाये रख सके। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण संस्थान की १८५८ ई. में स्थापना के बाद पुराने विस्मृत स्थानों की खोज की गई और पुरातात्विक साक्ष्यों तथा साहित्यिक उल्लेखों के आधार से उन्हें चिन्हित करने का प्रयास किया गया। भगवान महावीर के जन्म स्थान और निर्वाण भूमि दोनों की ही पहचान इस शोध-खोज के आधार पर पिछली शताब्दी में की जा सकी।

भगवान महावीर की जन्मभूमि वैशाली में संकल्पित निर्माणाधीन मन्दिर और उसके सम्बन्ध में आवश्यक विवरण **शोधादर्श**-७२ में दिया गया। भगवान महावीर की प्रथम देशना स्थली पर निर्मित समवशरण मन्दिर का चित्र और परिचय **शोधादर्श**-७० में दिया गया। इस अंक में भगवान महावीर की निर्वाण भूमि तीर्थक्षेत्र पावानगर में भगवान महावीर के मन्दिर का चित्र मुख पृष्ठ पर दिया जा रहा है। उसके सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी श्री पुखराज जैन, अध्यक्ष, पावानगर सिद्ध क्षेत्र समिति, द्वारा दी गई है। तद्विषयक उनका पत्र इसी अंक में पाठकों के पत्र के अन्तर्गत प्रकाशित है।

आद्य सम्पादक श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जी की जन्मशताब्दी ६ फरवरी २०१२ को पड़ रही है। उनके सम्बन्ध में संस्मरण एवं उद्गार साग्रह आमंत्रित हैं।

सुधी पाठकों एवं विद्वत् वर्ग का जो सहयोग हमें प्राप्त हो रहा है उससे हमें सतत् प्रेरणा प्राप्त हो रही है। इसके लिए हम आभारी हैं।

नलिन कान्त जैन

सम्पादक

गुरुगुण-कीर्तन

कविवर श्री भूधरदास

(संवत् १७५०-१८०६; ईस्वी सन् १६९३-१७४९)

- श्री रमा कान्त जैन

आगरा निवासी कवि भूधरदास भी कविवर द्यानतराय (जिनकी चर्चा विगत अंक ७३ में की गई है) की परम्परा के ही एक प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने अपने समकालीन कवियों की शृंगारिकता पर चोट करते हुए लिखा था -

राग उदय जग अन्ध भयौ, सहजे सब लोगन लाज गंवाई।
सीख बिना नर सीखत है, विषयनि के सेवन की सुपराई।।
ता पर और रचें रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझनि की अंखियन में झोंकत हैं रज रामदुहाई।।

यही नहीं, शृंगारी कवियों द्वारा नारी देह के लिए दी गई उपमाओं पर व्यंग करते हुए अपनी कल्पना का भावाभिव्यंजन निम्न प्रकार किया -

कंचन कुम्भन की उपमा, कहि देत उरोजन को कवि वारे।
ऊपर श्याम विलोकत के मनि-नीलम ढंकनी ढंक ढारे।।
यों सत बैन कहे न कुपण्डित, ये युग आमिष पिण्ड उघारे।
साधन झार दई मुंह छार, भये इहि हेत किधों कुच कारे।।

विक्रम संवत् १७६१ (सन् १७३४ ई.) में रचकर पूर्ण किये अपने सुभाषित संग्रह में, जो १०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय से युक्त होने के कारण **'भूधर शतक'** के नाम से जाना जाता है, सरस, प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा में मनुष्य की आशा-तृष्णा, संसार की असारता, वृद्धावस्था इत्यादि का बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से वर्णन किया है। मनुष्य की चाहनाओं का और उन सारे मनसूबों का मन ही मन समाकर रह जाने का क्या ही सुन्दर वर्णन निम्न पंक्तियों में किया गया है-

चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज सरे जिय राजी।
गेह चिनाय करूं गहना कछु, ब्याहि सुता सुत बांटिय भाजी।।
चिन्तत यों दिन जांहिं चले, जम आनि अचानक देत दगा जी।
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रुपी शतरंज की बाजी।।

शरीर को सौन्दर्य-प्रसाधनों से सजाने-संवारने वालों को शरीर की असलियत से अवगत कराते हुए कवि कहता है -

माता-पिता रज-वीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है।
माखिन के पर माफिक बाहर, चाम के बेठन बेठ धरी है।।
नाहीं तो आय लगैं अबहीं, बक वायस जीव बचै न धरी है।
देश दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है।।

शब्द-विन्यास में पटु कवि ने वृद्धावस्था का कितना स्वाभाविक शब्द-चित्र निम्नलिखित सवैये में प्रस्तुत किया है, वह दृष्टव्य है -

दृष्टि घटी पलटी तन की छवि, बंक भई गति लंक नई है।
रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयो परयंक लई है।।
काँपत नार बहै मुख लार, महामति संगति छोरि गई है।
अंग उपंग पुराने परै, तिषना उर और नवीन भई है।

वृद्धावस्था में अपनी कुशल-क्षेम पूछने वालों से कवि कहता है -

जोई दिन कटै सोई आय में अवश्य घटै,
बूंद बूंद बीतै जैसे अंजुली को जल है।
देह नित छीन होत नैन तेजहीन होत,
जोवन मलीन होत छीन होत बल है।।
आवै जरा नेरी तकै अंतक अहेरी आवै,
पर-भौ नजीक आत नर-भौं विफल है,
मिलकै मिलापी जन पूछत कुशल मेरी,
ऐसो माहीं मित्र, अब काहे की कुशल है।।

बालपन अज्ञान में और यौवन भोग-विलास व धन कमाने के चक्कर में बिता चुकने वाले मनुष्यों को प्रबोधते हुए भूधरदास कहते हैं -

बालपनै संभार सक्यौ कछु, जानत नाहिं हिताहित हा को।
यौवन वैस बसी वनिता उर, कै नित राग रह्यौ लछमी को।।
यौं पन दोइ विगोइ दये नर, डारत क्यों नरकै निज जी को।
आये हैं 'सेत' अजौं सठ चेत, गई सु गई अब राख रही को।।

अहिंसा-प्रेमी भूधर यह समझने में अपने को असमर्थ पाते हैं कि कैसे जीभ के जरा से स्वाद के कारण गरीब जीव मृग को मारने के लिए कठोर शिकारी के हाथ

बढ़ते हैं ? इस भाव को भोले मृग के चित्रण के साथ कवि ने निम्न कविता में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है -

कानन में बसै ऐसो आन न गरीब जीव,
प्रानन सौ प्यारौ प्रान पूंजी जिसे यहै है।
कायर सुभाव धरे काहूसौं न द्रोह करैं,
सबही सौं डरै दांत लियैं तिन रहै है।।
काहूसौं न रोष पुनि काहू पै न पोष चहै,
काहू के परोष परदोष नाहिं कहै है।
नेकु स्वाद सारिवेकौं ऐसे मृग मारिवेकों,
हा हा रे कठोर ! तेरौ कैसे कर बढ़े हैं।।

जैन धर्मानुयायी और जाति से खण्डेलवाल कवि भूधरदास के विषय में अधिक विवरण तो प्राप्त नहीं है, किन्तु **'भूधर शतक'** के अतिरिक्त उनके द्वारा रचित **'पार्श्वपुराण'** और ८० पदों का एक पद-संग्रह भी प्राप्त होता है। **पार्श्वपुराण** की रचना विक्रम संवत् १७८९ (सन् १७३२ ई.) में पूर्ण हुई थी। पं. नाथूराम प्रेमी के अनुसार **पार्श्वपुराण** एक उच्च श्रेणी का चरित्र ग्रन्थ है जो किसी संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ का अनुवाद न होकर स्वतन्त्र रूप से रचा गया है और कवित्व से परिपूर्ण है। इस ग्रन्थ की काव्य कला, उसमें संजोई उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की छटा का परिचय पाने हेतु निम्न दोहे पर्याप्त होंगे -

यथा हंस के बंस को, चला न सिखावै कोई।
त्यौं कुलीन नर नारि कैं, सहज नमन गुण होई।।
जिन-जननी रोमांच तन, जगी मुदित मन जान।
किधौं सकटक कमलिनी, विकसी निसि अवसान।।
पहरे सुभ आभरन तन, सुन्दर वसन सुरंग।
कलपबेल जंगम किधौं, चली सखीजन संग।।
रागादिक जलसौं भर्‌यौं, तन तलाब बहु भाय।
पारस-रवि दरसत सुखै, अथ सारस उड जाय।।
सुलभ काज गरुबो गनै, अलप बुद्धि की रीत।
ज्यौं कीड़ी कन ले चलै, किधौं चली गढ़ जीत।।

भूधर के पद भी अपने में अनूठे हैं। स्व. डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री के शब्दों में, "कवि भूधरदास कुशल कलाकार हैं। इन्होंने गीति-कला की बारीकियां अपने पदों में प्रदर्शित की हैं। इनके पदों में भावुकता के सहारे करुण रस और आत्मवेदन की अभिव्यंजना हुई है। पदों में शाब्दिक कोमलता, भावनाओं की मादकता और कल्पनाओं का इन्द्रजाल समन्वित रूप में विद्यमान हैं। इनके पदों में राग-विराग का गंगा-जमुनी संगम होने पर भी शृंगारिकता नहीं है। भाषा की लाक्षणिकता और काव्योक्तियों की विदग्धता यत्र-तत्र रूपकों में विद्यमान है।"

कवि भूधर ने कबीर की भांति ठगिनी माया का बड़ा ही सुन्दर रूपक अपने पद में प्रस्तुत किया है। किन्तु जहाँ कबीर उदाहरणों द्वारा माया की धूर्तता बतलाकर रह गये वहाँ भूधर उस ठगिनी की पोल खोलकर, उसे ठगने वाले को नमस्कार कर उनसे भी दो कदम आगे बढ़ गये। कबीर और भूधर द्वारा प्रस्तुत रूपक क्रमशः दृष्टव्य है -

माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोले, बोले मधुरी बानी।
केशव के कमला है बैठी, शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति है बैठी, तीरथ में भर पानी।।
योगी के योगिनी है बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा हूवै बैठी, काहू के कौड़ी कानी।।
भक्तन के भक्तिनि है बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै 'कबीर' सुनौ हो संतो, यह सब अकथ कहानी।।

❖ ❖ ❖

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछिताया।।१।।
आभा तनक दिखाय बिज्जु, ज्यों मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनों, अंत नरक पहुंचाया।।२।।
केते कंथ किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किस ही सौं नहिं प्रीति निबाही, वह तजि और लुभाया।।३।।
'भूधर' छलत फिरै यह सबकौ, भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे, मैं तिसको सिर नाया।।४।।

कबीर ने शरीर के लिए चरखा और तम्बूरे का रूपक प्रस्तुत किया था। भूधर ने भी अपने पद में चरखे का रूपक प्रस्तुत किया है। दोनों में कितना साम्य है, नीचे दृष्टव्य है। कबीर कहते हैं -

चरखा चलै सुरत बिरहिन का।
काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का।
सुरत भांवरी होत गगन में, पौढा ज्ञान-रतन का।।
मिहीन सूत विरहिन कातैं, मांझा प्रेम भगति का।
कहै 'कबीर' सुनो भाई साधो, माला गूंथौ दिन रैन का।।

❖ ❖ ❖

साधो यह तन ठाठ तंबूरे का।
खेंचत तार मरोरत खूंटी, निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार बिखरि गई खूंटी, हो गया घूरम घूरे का।।
या देही का गरब न कीजै, उड़ि गया हंस तंबूरे का।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, अगम पंथ कोई सूरे का।।

भूधर कवि कहते हैं -

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना।
पग खूंटे द्वय हालन लागे, उर मदरा खखराना।
छीदी हुई पांखडी पसली, फिरै नहीं मनमाना।।१।।
रसना तकली ने बल खाया, सौ अब कैसे खूंटै।
सबद सूत सूधा नहिं निकसै, घड़ी घड़ी पल पल टूटै।।२।।
आयु माल का नांहि भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, बैद बाढही हारे।।३।।
नया चरखाला रंगा चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरनू गये गुन अगले, अब देखे नहिं भाये।।४।।
मोटा महीं कात कर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अन्त आग में ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सबेरा।।५।।

स्पष्ट है कि कवि भूधर द्वारा प्रस्तुत ये रूपक सजीव और प्रभावोत्पादक हैं।

(स्मृतिशेष श्री रमा कान्त जैन की पुस्तक 'हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार' से संकलित। - सम्पादक)

जाति और धर्म

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

अखिल भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में जैन धर्म अपनी उदाराशयता एवं बिना किसी भेदभाव के प्राणीमात्र के हित-सुख की व्यापक दृष्टि के कारण महत्वपूर्ण विलक्षण स्थान रखता आया है। धर्म शब्द की एक व्याख्या के अनुसार वह ऐसा कर्तव्य है जो मनुष्य मात्र के ही नहीं, प्राणीमात्र के लौकिक तथा पारलौकिक, उभय जीवन को नियन्त्रित एवं अनुशासित करके, सबको सुपथ पर ले चलने में सहायक होता है। जैन धर्म या जिन धर्म तो वस्तुतः आत्मधर्म है, अर्थात् एक ऐसा व्यक्तिवादी धर्म है जो बिना किसी भेदभाव के समस्त प्राणियों के ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नयन और सुख-सुविधा का विचार करता है। इसके विपरीत, सामाजिक या लौकिक धर्म केवल मनुष्यों के ही इहलौकिक हितसाधन तक सीमित होता है, और बहुधा विविध अनगिनत अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों पर अवलम्बित रहता है। आत्मधर्म से भिन्न लौकिक धर्म मूलतः प्रवृत्ति प्रधान ब्रह्म वैदिक परम्परा की देन है, जिसने शनैः शनैः वर्णाश्रमधर्म का रूप ले लिया। उस परम्परा में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णभेद मूलतः गुण-कर्मानुसारी ही थे, किन्तु समय के साथ उनके जन्मतः होने की मान्यता रूढ़ होती गई। जैन गृहस्थों के सामाजिक या लौकिक धर्म पर कालान्तर में उक्त ब्राह्मणीय वर्ण व्यवस्था तथा उससे उद्भूत जाति-व्यवस्था का प्रभाव पड़ा, और धीरे-धीरे उन्होंने उसे अपना लिया। किन्तु मूल जिन धर्म की प्रकृति एवं स्वरूप के साथ उसकी कोई संगति नहीं है। कुन्दकुन्द, गुणधर, धरसेन, भूतबलि, वट्टकेरि, शिवार्य, समन्तभद्र, पूज्यपाद, जटासिहनंदि, रविषेण, हरिवंशकार जिनसेन, अकलंक, गुणभद्र, अमितगति, प्रभाचन्द्र, शुभचन्द्र प्रभृति अनेक प्राचीन प्रामाणिक आचार्य-पुंगवों ने जन्मतः जाति प्रथा का निषेध ही किया है और गुणपद की ही स्थापना की है। इस विषय में दिगम्बर-श्वेताम्बर समग्र जैन संस्कृति का सुस्पष्ट उद्घोष रहा है कि -

कम्मणा होई बम्हणा, खत्तियो हवई कम्मणा।
कम्मणा होई वैस्सो, सुद्दोवि हवइ कम्मणा।।

वास्तव में प्रचलित जाति प्रथा कभी और कैसी भी रही हो, तथा किन्हीं परिस्थितियों में उपादेय अथवा शायद क्वचित् आवश्यक भी रही हो, किन्तु कालदोष

एवं निहित स्वार्थों के कारण उसमें जो कुशील या कुरीतियां, विकृतियां, विसंगतियां एवं अन्ध-विश्वास घर कर गये हैं, और परिणाम स्वरूप देश में, राष्ट्र में व समाज में एक ही धर्म सम्प्रदाय के अनुयायियों में जो टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, तथा पारस्परिक फूट, वैमनस्य एवं भेद-भाव खुलकर सामने आ रहे हैं, वे व्यक्ति या समूह, सम्प्रदाय या समाज, देश या राष्ट्र किसी के लिए भी हितकर नहीं हैं और प्रगति के सबसे बड़े अवरोधक हैं। धर्म की आड़ लेकर या कतिपय धर्मशास्त्रों, साधु-सेवी पंडितों आदि की साक्षी देकर जो उक्त विघटनकारी धारणाओं का पोषण किया जाता है और उनके विरोध में आवाज उठाने वाले का मुंह बन्द करने की चेष्टा की जाती है, उससे यह आवश्यक हो जाता है कि धर्म के मर्म को धर्म की मूलाम्नाय के प्रामाणिक मौलिक शास्त्रों से जाना और समझा जाय।

धर्म-तत्त्व मानव इतिहास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। सभी देशों और कालों में जन-जन के मानस को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला यही धर्म-तत्त्व रहा है। साथ ही, प्रायः सभी धर्म-प्रवर्तकों ने, उन्होंने भी जिन्होंने मनुष्येतर अन्य प्राणियों की उपेक्षा की, मनुष्यों को ऊँच-नीच आदि के पारस्परिक भेदभावों से ऊपर उठने का भी उपदेश दिया। यहूदी, ईसाई और मुसलमान, यहां तक कि बौद्ध, कबीर पंथी व सिख आदि कई भारतीय धर्म भी, मनुष्यमात्र की समानता या इगैलिटेरियनिज़्म का दावा करते हैं। श्रमण परम्परा के निर्ग्रन्थ तीर्थंकरों द्वारा आचरित एवं उपदेशित जिनधर्म का तो मूलाधार ही समत्वभाव है। यदि कोई अपवाद है तो वह ब्राह्मण-वैदिक परम्परा से उद्भूत, वर्णाश्रम धर्म पर आधारित और जन्मतः जातिवाद को स्वीकार करने वाला तथाकथित हिन्दू धर्म है। यों तो मूलतः समानतावादी एवं जातिवाद विरोधी परम्पराओं में भी ऊंच-नीच का वर्गभेदपरक जातिवाद किसी न किसी प्रकार या रूप में घर कर ही गया, किन्तु उनमें उसकी जकड़ और पकड़ इतनी सख्त नहीं है जितनी कि सनातनी हिन्दू धर्म में है। आज का प्रगतिशील विश्वमानस ऐसे भेद-भावों को मानव के कल्याण एवं उन्नयन में बाधक समझता है और उनका विरोध करता है।

जैन समाज में तद्विषयक भ्रांति के रूढ़ हो जाने में कतिपय ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा विपरीत मान्यता वाले बहुसंख्यक समुदाय के निकट सम्पर्क के अतिरिक्त, दो कारण प्रमुख प्रतीत होते हैं। एक तो यह कि वर्ण-जाति, कुल, गोत्र में से प्रत्येक शब्द के कई-कई अर्थ हैं। जिनागम में कर्म-सिद्धांत के अनुसार उनमें

से प्रत्येक का जो अर्थ है, वह लोक व्यवहार में प्रचलित अर्थ से भिन्न और विलक्षण है। दोनों को अभिन्न मान लेने से भ्रान्त धारणाएं बन जाती हैं। दूसरे, जो लौकिक, सामाजिक या व्यवहार धर्म है, वह परिस्थितिजन्य है, और देश-कालानुसार परिवर्तनीय अथवा संशोधनीय है। इस स्थूल तथ्य को भूलकर उसे जिनधर्म, आत्मधर्म, निश्चय-धर्म या मोक्षमार्ग से, जो शास्वत एवं अपरिवर्तनीय है, अभिन्न समझ लिया जाता है। पक्षव्यामोह एवं कदाग्रह से मुक्त होकर भ्रान्ति के जनक इन दोनों कारणों को जिन धर्म की प्रकृति, उसके सिद्धांत, तत्वज्ञान एवं मौलिक परम्परा के प्रतिपादकों के प्राचीन प्रामाणिक शास्त्रों के आलोक में भली-भांति समझकर प्रकृत विषय के सम्बन्ध में निर्णय करने चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि लौकिक, सामाजिक या व्यवहार धर्म को सर्वथा नकार दिया जाय। वैसा करना न सम्भव है और न हितकर ही। परन्तु उसमें युगानुसारी तथा क्षेत्रानुसारी आवश्यक एवं समुचित परिवर्तन, संशोधनादि करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतएव व्यावहारिक, सामाजिक या लौकिक धर्म की व्यवस्थाएं, संस्थाएं और प्रथाएं रहेंगी ही, उनका रहना अपेक्षित भी है, किन्तु वे ऐसी हों जो सम्यक्त्व को दूषित करने वाली न हों, वरन् उसकी पोषक हों - मोक्षमार्ग में साधक हों, बाधक न हों।

१८५७ ई० के स्वातन्त्र्य-समर के उपरान्त जब इस महादेश पर विदेशी अंग्रेजी शासन सुव्यवस्थित हो गया तो प्रायः सम्पूर्ण देश में नवजागृति एवं अभ्युत्थान की एक अभूतपूर्व लहर शनैः-शनैः व्याप्त होने लगी, जिससे जैन समाज भी अप्रभावित न रह सका। फलस्वरूप लगभग १८५७ से १९२४ ई० के पचास वर्षों में धर्मप्रचार एवं शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ समाज सुधार के भी अनेक आन्दोलन और अभियान चले। धर्म शास्त्रों का मुद्रण-प्रकाशन, धार्मिक व लौकिक शिक्षालयों तथा परीक्षा बोर्डों की स्थापना, स्त्री-जाति का उद्धार, कुरीतियों के निवारण का उद्घोष, कई अखिल भारतीय सुधारवादी संगठनों का उदय, धार्मिक सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आदि उन्हीं आंदोलनों के परिणाम थे। जातिप्रथा की कुरीतियों एवं हानियों पर तथाकथित बाबू पार्टी अर्थात् आधुनिक शिक्षा प्राप्त सुधारक वर्ग ने ही नहीं, तथाकथित पंडित दल के गुरु गोपालदास बरैया जैसे महारथियों ने भी आवाज उठाई। बा. सूरजभान वकील, पं. नाथूराम प्रेमी, ब्र. सीतलप्रसाद, आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार प्रभृति अनेक शास्त्रज्ञ सुधारकों ने उस अभियान में प्रभूत योग दिया। अनेक पुस्तकें एवं लेखादि लिखे गये। मुख्तार सा० की पुस्तकें **जिन पूजाधिकार मीमांसा, शिक्षाप्रद**

शास्त्रीय उदाहरण, जैन धर्म सर्वोदय तीर्थ है, ग्रन्थ-परीक्षा आदि, पं. दरबारीलाल सत्यभक्त की **विजातीय-विवाह मीमांसा,** बा० जयभगवान की **वीर शासन की उदारता,** पं. फूलचन्द शास्त्री की **जाति-वर्ण और धर्म मीमांसा** जैसी अनेक पुस्तकें तथा विभिन्न लेखकों के सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए और सुधारवादी नेताओं के जोशीले मंचीय भाषणों ने समाज को भरपूर झकझोरा। फलस्वरूप समाज में विचार परिवर्तन भी होने लगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति १९४७ ई. के उपरान्त आधुनिक युग की नई परिस्थितियों में उसमें और अधिक वेग आया। प्रतिक्रियावादियों के भरपूर प्रयत्नों के बावजूद आज का जनमानस सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक शिथिलाचार के प्रति सजग हो गया है, और व्यवहार में जाति-पांति के पुराने बंधन बहुत ढीले पड़ते जाते हैं। वस्तुतः आज तो विश्वमानस अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक प्रायः सभी स्तरों पर जातिवाद के भेदपरक एवं पृथकतावादी दूषणों का विरोधी हो उठा है। यह समय की मांग है।

वस्तुतः धर्म तो मनुष्यों के जोड़ने के लिए है, तोड़ने के लिए नहीं, जबकि प्रचलित जाति-उपजातिवाद एक ही धर्म के अनुयायियों में और एक ही राष्ट्र के नागरिकों में परस्पर फूट डालकर विघटन का पोषण करता है। जैन सिद्धान्त के अनुसार तो सभी मनुष्यों की एक ही जाति अर्थात् जाति नाम कर्म के उदय से होने वाली मनुष्य जाति है। प्रचलित जाति-उपजातियां परिस्थिति-जन्य हैं, मनुष्यकृत हैं, कृत्रिम और काल्पनिक हैं - वे प्राकृतिक या शाश्वत नहीं हैं। अनेक प्राचीन जातियां समय के गर्भ में विलीन हो गयीं या अन्य जातियों में अन्तर्भुक्त हो गईं, और अनेक नवीन जातियां-उपजातियां उत्पन्न होती रही हैं। अतएव धार्मिक दृष्टि से व्यक्ति और समष्टि के हित में, कम से कम समस्त साधर्मी जन तो उक्त भेदभावों से ऊपर उठकर अपने संगठन को अखण्ड एवं सौहार्दपूर्ण बनाये रखें, यह आवश्यक है। तीर्थंकर नामा सर्वातिशय पुण्य प्रकृति के आस्रव एवं बन्ध की कारण सोलह-भावनाओं में परिगणित **साधर्मी-वात्सल्य भावना** का महत्व इसी दृष्टि से आंकना उचित होगा।

[वीर-वाणी (जयपुर, ३ जुलाई १९८६) से संकलित। स्मृतिशेष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के ये विचार आज की परिस्थिति में भी अत्यन्त प्रांसगिक हैं।
- सम्पादक]

श्राद्ध-पर्व दीपावली

- श्री अजित प्रसाद जैन

ज्ञान पूज्य तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण पर स्वयं उनके प्रमुख शिष्य चार ज्ञान के धारी गौतम गणधर विषाद ग्रस्त हो गये थे। किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने विषाद पर विजय प्राप्त की तथा मोक्ष कल्याणक के दृष्टा उपस्थित चतुर्विध संघ को सान्त्वना देते हुए उन्होंने संबोधा कि "भगवान तो शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, सिद्धात्मा हो गये, कृत कृत्य हो गये। आओ, उनके द्वारा प्रज्ज्वलित ज्ञान ज्योति को हम एक दीप से दूसरा दीप जलाकर अक्षुण्ण रखें, ज्ञान की अजस्र धारा को निरन्तर प्रवाहमान रखें।"

श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थ **कल्प सूत्र** जो अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहू स्वामी (ईसा पूर्व चौथी शती) कृत माना जाता है, में लिखा है कि भगवान के निर्वाण के प्रत्यक्षदर्शी नौ मल्ल, नौ लिच्छवी, काशी व कोसल के राजा तथा पावा के असंख्य नागरिकों ने दीपमालिका संजोकर निर्वाणोत्सव मनाया। यह घटना ईस्वी सन् से ५२७ वर्ष पूर्व घटित हुई थी तथा तब से श्रद्धालु जन इसे प्रति वर्ष अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति के साथ मनाते आ रहे हैं। देश भर में इस पर्व का मनाया जाना दीर्घकाल तक सम्पूर्ण देश में जैन धर्म के व्यापक प्रसार एवं प्रभाव का द्योतक है। भगवान महावीर को मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति तथा गणधरों में प्रमुख (गणेश) गौतम स्वामी को इसी दिन केवलज्ञान की प्राप्ति की स्मृति को बनाए रखने के लिए लक्ष्मी एवं गणेश की पूजा की जाती है। तभी से वीर निर्वाण संवत् प्रारम्भ हुआ जो इस समय संसार में प्रचलित प्राचीनतम सम्वत् है।

भगवज्जिनसेनाचार्य कृत **हरिवंश पुराण** (रचना ७८६ ई०) तथा आचार्य गुणभद्र कृत **उत्तर पुराण** (रचना ईसा की नौवी शती) में भी भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव का विशद वर्णन किया गया है। अनेक मुसलमान विद्वानों ने, यथा, अब्दुल रहमान मुलतानी ने अपभ्रंश के ग्रंथ **संदेश वाहा** (रचना १३०० ई०) में और अबुल फजल ने **आइने अकबरी** (रचना १५९४ ई०) में तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, श्री परिपूर्णानन्द वर्मा आदि अनेक मनीषी विद्वानों, साहित्यकारों व इतिहासकारों ने दीपावली पर्व का प्रारम्भ भगवान महावीर के निर्वाण से जुड़ा स्वीकार किया है। कालान्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ तथा गुरू

गोविन्द सिंह की महत्वपूर्ण जीवन घटनाओं से जुड़ जाने से इस पर्व का महत्व बढ़ता गया।

एक जनश्रुति के अनुसार भगवान रामचंद्र ने लंकाधिपति रावण पर विजय प्राप्त कर दीपावली के दिन अयोध्या में प्रवेश किया था तथा राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए थे जिसकी खुशी में अयोध्या में दीपावली मनाई गई थी किन्तु इस जनश्रुति की पुष्टि रामकथा के सर्व प्राचीन ग्रंथ ऋषि वाल्मीकि कृत **रामायण** से नहीं होती। उक्त **रामायण** के अनुसार श्री रामचंद्र चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को रावण पर विजय प्राप्त कर उसकी अन्त्येष्टी करवाकर और विभीषण को लंका के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पुष्पक विमान द्वारा एक सप्ताह के भीतर ही वैशाख कृष्णा पंचमी को प्रयाग आकर भारद्वाज मुनि के आश्रम में पधारे थे और अगले दिन ही अयोध्या में उनका भव्य स्वागत और राज्याभिषेक हुआ था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रावण वध चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को ही माना है तथा राम राज्याभिषेक दीपावली से ६ मास से भी अधिक पहिले हुआ माना है।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण महोत्सव के कारण दीपावली जैन धर्मावलम्बियों के लिए अत्यन्त श्रद्धा का पर्व है। वस्तुतः यह जैनियों का श्राद्ध पर्व है जिसमें न केवल भगवान महावीर को बल्कि इस अवसर्पिणी काल में आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर से लेकर जम्बू स्वामी पर्यन्त जितने भी महापुरुष मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक पधारे हैं उनका तथा उनकी निर्वाण भूमियों का अत्यन्त विनय के साथ स्तवन-वन्दना करके श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है।

दीप से दीप जलाओ, जिनवाणी द्वारा निसृत ज्ञान गंगा को निरन्तर प्रवाहमान रखो - यही महान् ज्योति पर्व दीपावली का संदेश है।

मेरा सुझाव है कि जैनी, इसे अपने परिवार के पूर्वजों के श्राद्ध-श्रद्धांजलि दिवस के रूप में भी मनाया करें।

[शोधादर्श-१० से संकलित स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन के ये विचार मननीय हैं। -सं.]

इतिहास के प्रति जैन दृष्टि

- डॉ. शशि कान्त जैन

इतिहास

'इतिहास' का सामान्य अर्थ है 'इति इह आसीत्' - अर्थात् 'यहां ऐसा हुआ'। जो कुछ इस लोक में घटित होता है उसका एक काल-क्रमानुसार विवरण सामान्य रूप से 'इतिहास' का बोध कराता है। परन्तु इतिहास लेखन में दृष्टि घटना-क्रम के उल्लेख मात्र की नहीं होती है। उसका मन्तव्य दो प्रकार से देखा जा सकता है, एक तो यह कि हम पहले जो कुछ हुआ है उन घटनाओं से यह मार्गदर्शन प्राप्त करें कि अप्रिय घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो, और दूसरे यह कि पहले जो कुछ उत्तम और सुखद हुआ है उससे आगे भी प्रगति करने की प्रेरणा लें। इस प्रकार के इतिहास-लेखन की प्रवृत्ति भी देखी गई है कि लेखक अपनी आम्नाय, पंथ या जाति को महिमा मंडित करने की दृष्टि के साथ ही दूसरे की अवमानना करने का भी प्रयत्न करता है।

जिस समय से विदेशियों का आक्रामक स्वरूप प्रत्यक्ष हुआ और उन्होंने इस देश पर अपना आधिपत्य जमाने में सफलता प्राप्त की, उसके पूर्ववर्ती काल में भारत में ही विभिन्न सांस्कृतिक धाराएं प्रतिस्पर्धारत थीं। वैदिक ब्राह्मणीय दार्शनिक परम्पराओं और श्रमणीय जैन एवं बौद्ध परम्पराओं में अपना श्रेष्ठत्व प्रतिपादित करने की होड़ थी। १२वीं शताब्दी से मुस्लिम इतिहासकारों ने भारत की जन संस्कृति की अवमानना का सबल प्रयत्न किया। १८वीं शताब्दी से अंग्रेज इतिहासकारों ने एक सुनियोजित ढंग से भारतीय इतिहास और संस्कृति की अवमानना का सफल प्रयास किया। विगत शताधिक वर्षों में भारत के भी इतिहास मनीषियों ने विदेशी प्रभाव में उसी दृष्टि से इतिहास का प्रस्तुतिकरण किया, परन्तु कुछ विद्वानों ने जहां अपने धार्मिक कदाग्रह के अधीन मात्र अपने अनुश्रुतिगम्य कथानकों को मान्यता दी, वहीं कुछ विद्वानों ने एक समग्र और व्यापक दृष्टि का परिचय भी दिया तथा इतिहास के पूर्व उपेक्षित स्रोतों का भी समुचित उपयोग किया। इन विद्वानों में इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का उल्लेख किया जाना प्रासंगिक होगा।

अरबी-फारसी में इतिहास को तवारीख कहा जाता है। 'तवारीख' 'तारीख' का बहुवचन है। इसका सामान्य अर्थ है कि कालक्रमानुसार घटनाओं का विवरण दिया जाये।

अंग्रेजी में History शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसका भी सामान्य अर्थ continuous methodical record of public events है। परन्तु इसमें किसी राष्ट्र

अथवा जन-समुदाय के सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास का अध्ययन भी अभिप्रेत है; किसी व्यक्ति, जन-समुदाय, जाति, राष्ट्र और धर्म वा सम्प्रदाय या विचारधारा से सम्बन्धित घटनाओं का क्रमिक विवरण तथा वस्तुनिष्ठ और तुलनात्मक अध्ययन भी इससे अभिप्रेत है; और वर्तमान में 'इतिहास', 'तवारीख' और 'History' से इसी का बोध सामान्यतः होता है

पुराण

भारत में प्राचीन काल में इतिहास-लेखन का इस रूप में प्रचलन नहीं रहा, वरन् पुराण के रूप में घटनाओं का कथन किया जाता रहा। पुराण-लेखन का उद्देश्य, आराध्य महापुरुषों का भक्ति से प्रेरित होकर इस प्रकार चित्रण करना था कि उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति में वृद्धि हो। पुराण, चरित और महाकाव्य के रूप में कथानकों को निबद्ध किया गया। इसे अनुभूतिगम्य इतिहास के रुप में मान्यता दी गई। इसमें सर्वव्यापक दृष्टि के लिए अवकाश नहीं था, वरन् अपने आराध्य को महिमा-मंडित करने की भावना मूलभूत थी। जैन परम्परा में पुराण और इतिहास के अंतर को आचार्य जिनसेन ने **महापुराण** में इंगित करते हुये बताया है कि पुराण वह है जिसमें महापुरुषों का वर्णन किया जाये और इतिहास वह है जिसमें ऐसी अनेक कथाओं का जिनमें 'यहां ऐसा हुआ' घटनाओं का निरूपण हो। 'इतिहास', 'इतिवृत्त' और 'ऐतिह्य' समानार्थक हैं।

पुराण को ब्राह्मणीय साहित्य में परिभाषित करते हुये कहा गया है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशों मन्वन्तराणि च
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

अर्थात् पुराण में सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (विनाश), वंश, मनवन्तर (मनुओं के बीच का युग), तथा वंशों के चरित (वंशानुगत इतिहास) का समावेश होता है। जैन पुराणों पर भी यह परिभाषा सुसंगत है। **महापुराण** के रचयिता जिनसेन ने **आदिपुराण** के प्रथम सर्ग के श्लोक २०-२३ में उल्लेख किया है कि पुराण में पुरातन घटनाओं का कथन होता है (पुरातनं पुराणं स्यात् तन्महन्महदाश्रयात्)। परन्तु महापुराण से तात्पर्य है कि इसमें महापुरुषों का कथन किया गया है, अथवा यह भी कि महान व्यक्तियों द्वारा यह कथन किया गया है, अथवा यह भी कि यह महा श्रेय की प्राप्ति का मार्ग दिखाता है। यह भी कहा गया है कि पुराण का कथन पुरातन कवियों द्वारा किया गया था और इसमें अन्तर्निहित महानता के कारण इसे 'महा' विशेषण से संयुक्त करके 'महापुराण' कहा जाता है। प्रभाचन्द्र ने अपने **टिप्पण** में यह भी इंगित किया है कि इतिहास किसी एक व्यक्ति के कथानक का वर्णन करता है जब कि पुराण में त्रिषष्ठी (६३) शलाका पुरुषों की कथा का वर्णन होता है। इन ६३ शलाका पुरुषों में इस काल

के २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलभद्र, ६ वासुदेव (नारायण) और ६ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) परिगणित होते हैं। वर्तमान कल्पकाल में तीन तीर्थंकर शान्ति, कुन्थु और अर चक्रवर्ती भी हैं, अतः संख्या ६० रह जाती है।

जैन दृष्टि

जैन अनुश्रुतिगम्य मान्यता का विवेचन **इतिहास-मनीषी डॉ० ज्योति प्रसाद जैन** ने करते हुये बताया है कि "जैनधर्म एवं संस्कृति की यह असंदिग्ध मौलिक मान्यता है कि चराचर जगत या विश्व अनादि और अनन्त है। जो विभिन्न एवं विविध द्रव्य विश्व के उपादान हैं, जिनसे कि वह निर्मित है, वह सब भी अनादि और अनन्त हैं। असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं होती और सत् का कभी विनाश नहीं होता। अतएव, इस विश्व की न कभी किसी ने सृष्टि की, और न कभी किसी के द्वारा उसका अन्त ही होगा। किन्तु साथ ही, इस शाश्वत जगत में उसके उपादान द्रव्यों में निरन्तर परिवर्तन, परिणमन, पर्याय से पर्यायान्तर होते रहते हैं, और उनका निमित्त है कालचक्र। काल का प्रवाह भी अनादि-अनन्त है। काल का सबसे छोटा अविभाज्य अंश 'समय' कहलाता है और सबसे बड़ी व्यवहार्य इकाई 'कल्पकाल'। एक कल्पकाल का परिमाण बीस कोटाकोटि 'सागर' होता है जो स्थूलतः संख्यातीत वर्षों का होता है। प्रत्येक कल्पकाल के दो विभाग होते हैं - एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी, जो एक के अनन्तर एक आते रहते हैं। अवसर्पिणी उत्तरोत्तर ह्रास एवं अवनति का युग होता है और उत्सर्पिणी उत्तरोत्तर विकास एवं उन्नति का। इन दोनों में से प्रत्येक छः भागों में विभक्त होता है और अवसर्पिणी के प्रारंभ से उक्त छः युगों या कालों की गणना प्रारंभ होती है। प्रथम काल सुखमा-सुखमा, द्वितीय काल सुखमा, तृतीय काल सुखमा-दुखमा, चतुर्थ काल दुखमा-सुखमा, पंचम काल दुखमा, और षष्टम काल दुखमा-दुखमा, हैं।

इस समय कल्पकाल का अवसर्पिणी विभाग चल रहा है। वर्तमान अवसर्पिणी की यह विशेषता है कि इसमें कतिपय अपवाद या सनातन नियम के विरुद्ध कुछ-एक अनोखी बातें भी हो जाया करती हैं। अतएव सामान्य अवसर्पिणी से भेद करने के लिये इसे हुंडावसर्पिणी कहते हैं। इसके प्रथम चार भाग व्यतीत हो चुके हैं और पांचवा भाग या आरा (अरिक) चल रहा है जिसके लगभग अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और साढ़े अठारह सहस्र वर्ष शेष हैं।

जैनों के परम्परागत विश्वास के अनुसार वर्तमान कल्पकाल के प्रथम तीन युगों में भोग भूमि की स्थिति थी। मनुष्य जीवन की वह प्रकृत्याश्रित आदिम दशा थी। न कोई संस्कृति थी न सभ्यता, न कोई व्यवस्था थी और न नियम। जीवन अत्यन्त सरल, एकाकी, स्वतन्त्र एवं प्राकृतिक था। जो थोड़ी बहुंत भौतिक आवश्यकताएं थीं

उनकी पूर्ति कल्पवृक्षों से स्वतः हो जाया करती थी। मनुष्य शान्त एवं निर्दोष था। कोई संघर्ष या द्वन्द नहीं था। आधुनिक भूतत्व एवं नृतत्व विज्ञान सम्मत आदिम युगीन प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय युगों की वस्तुस्थिति के साथ इस जैन मान्यता का अद्‌भुत सादृश्य है। जैन मान्यता के उक्त तीनों युगों में पहला युग असंख्य वर्षों का था, दूसरा उससे लगभग आधा था और तीसरा दूसरे से भी आधा था, तथापि यह तीसरा युग भी अनगिनत वर्षों का था। इस अनुमानातीत सुदीर्घ काल में मानवता प्रायः सुषुप्त पड़ी रही, अतएव उसका कोई इतिहास भी नहीं है। वह अनाम युग था।

तीसरे काल के अन्तिम भाग में चिर निद्रित मनुष्य ने अंगड़ाई लेनी शुरू की। भोगभूमि का अवसान होने लगा। कालचक्र के प्रभाव से होने वाले परिवर्तनों को देखकर लोग शंकित और भयभीत होने लगे। उनके मन में नाना प्रश्न उठने लगे। जिज्ञासा करवट लेने लगी। अतएव उन्होंने स्वयं को कुलों (जनों, समूहों या कबीलों) में गठित करना प्रारंभ किया। इस कार्य में बल, बुद्धि आदि में विशिष्ट जिन व्यक्तियों ने उनका नेतृत्व, मार्गदर्शन और समाधान किया वे 'कुलकर' कहलाये। आवश्यकतानुसार व्यवस्था भी वे देते थे और अनुशासन भी रखते थे, अतः वे 'मनु' भी कहलाये। उक्त तीसरे युग के अन्त के लगभग ऐसे चौदह कुलकर या मनु हुये, जिनमें से सर्वप्रथम का नाम प्रतिश्रुति था और अन्तिम का नाभिराय। इन कुलकरों ने अपने-अपने समय की परिवर्तित परिस्थितियों में अपने कुलों का संरक्षण, समाधान और मार्गदर्शन किया। सामाजिक जीवन प्रारंभ हो रहा था, अब कर्मयुग सम्मुख था।"

कुलकर युग

जैन परम्परा में १४ कुलकरों की एक सामान्य मान्यता है और ऋषभ को १५वां कुलकर तथा उनके पुत्र भरत को १६वां कुलकर भी इस अपेक्षा से मान्य किया गया है क्योंकि ऋषभ प्रथम तीर्थंकर थे जिन्होंने लौकिक अभ्युदय का उपाय बताने के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त किया, तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती थे जिन्होंने मानव समाज में शासन व्यवस्था को एक स्वरूप प्रदान कर कुलकर मर्यादा का निर्वाह किया।

चौदह कुलकरों ने क्रमशः सभ्यता की ओर मानव को प्राकृतिक सदयता के क्षीण होने के क्रम में अग्रसर किया। (१) प्रतिश्रुति ने सूर्य और चन्द्र के प्रथम बार दृष्टिगत होने पर भयभीत मनुजों का भय निवारण किया। (२) सन्मति ने तारा समूह के प्रथम बार दृष्टिगत होने पर उसके प्रति मनुष्य के भय का निवारण किया। (३) क्षेमंकर ने पशुओं को पालतू बनाकर उपयोग में लाने के उपाय बताये। (४) क्षेमंधर ने हिंस्र हो गये वन्य पशुओं से काष्ठ एवं पाषण के आयुधों की सहायता से त्राण पाने का

उपाय बताया। (५) सीमंकर ने ह्रास होते जा रहे कल्पवृक्षों की कमी से उद्भूत विवाद का निराकरण मानव समूहों के लिए कल्पवृक्षों की सीमा नियत करके किया और इस प्रकार सर्वप्रथम सम्पत्ति की अवधारणा मानव समाज में हुई। इन पांच कुलकरों के समय में शनैः-शनैः अपराध भावना में वृद्धि हुई और सम्पत्ति की अवधारणा ने अपराध वृत्ति को सम्पुष्ट किया, तथापि अभी मानव अपराध-बोध में सहज था और "हा" अर्थात् खेद है कि तुमने ऐसा अपराध किया, कह देने मात्र से अपराध का शोधन हो जाता था तथा अपराधी पुनः अपराध में प्रवृत्त नहीं होता था। अभी मानव सहज प्रकृत अवस्था (Savage Stage) में था।

(६) सीमंधर ने यह देखकर कि भोजन-प्रदायी कल्पवृक्षों का अभाव बढ़ता जा रहा है जिसके कारण मनुष्यों में आपस में कलह बढ़ती जा रही है, व्यक्तिशः कल्पवृक्षों के उपयोग की सीमा नियत की और इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा का सूत्रपात किया। (७) विमलवाहन ने पालतू पशुओं को वश में कर और बन्धन में रख वाहन के रूप में उपयोग में लाने का उपाय बताया। (८) चक्षुष्मान के समय में माता-पिता युगलिया सन्तान पुत्र और पुत्री को जन्म देने के बाद जीवित रहे और उनमें अपनी सन्तान के प्रति वात्सल्य भाव का उदय हुआ। (९) यशस्वान् के समय में मानव अपनी सन्तान में ममत्व का अनुभव करने लगा - सम्भवतः अब माता में प्रसव पीड़ा की अनुभूति और सन्तान को स्तन पान कराने की इच्छा जागृत हुई। अब समूह से जाति की ओर मनुष्य अग्रसर हुआ। (१०) अभिचन्द्र के समय में माता-पिता अपनी सन्तान के साथ क्रीड़ा भी करने लगे और उन्हें सन्तान सुख का बोध होने लगा। उक्त ५ कुलकरों के समय में व्यक्तिगत सम्पत्ति और सन्तान के प्रति मोह ने अपराध-वृत्ति को प्रोत्साहित किया परन्तु अभी भी सामाजिक अपराध की वृत्ति जागृत नहीं हो पायी थी। अपराध-बोध की सहजता कम होती गई और अब अपराध निवारण के लिए अपराधी को "हा" के साथ "मा" का आदेश भी करना पड़ने लगा - "खेद है कि तुमने ऐसा अपराध किया, अब आगे मत करना"। अब मानव सहज प्रकृत अवस्था से असंस्कृत अवस्था (Barbaric Stage) में अग्रसर हो गया था।

(११) चन्द्राभ के समय में माता-पिता सन्तान का लालन-पालन करने लगे और कौटुम्बिक व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। (१२) मरुद्देव के समय में कल्पवृक्षों अर्थात् प्राकृतिक सम्पदा का नियमन आवश्यक हो गया। मनुष्य को भोजन के लिए दूसरे

स्थान पर जाने की और उसके लिए पर्वतारोहण तथा नदी पार करने के लिए नाविक विद्या की भी आवश्यकता हुई। भोजन की खोज में चलवासिता का दौर (Nomadic Stage) प्रारम्भ हुआ। (१३) प्रसेनजित् ने भ्रूण विज्ञान की शिक्षा दी और बच्चों के जन्म पर जराय रूपी मल को हटाने का उपदेश दिया। (१४) नाभिराज ने जन्मोपरान्त बच्चों की नाभि पर लगे नाल को काट़ने का उपाय बताया। अब मानव सन्तान उस रूप में आई जिसको हम आज जानते हैं। शारीरिक शुचिता और सन्तान के माता से स्वतंत्र अस्तित्व का बोध हुआ। मानव कबीलों में परिभ्रमण-शील रहा। जीने के लिए संघर्ष बढ़ता गया जिसका परिणाम स्वभावतः जनसंख्या में नर-नारी अनुपात में असंगति उत्पन्न होना था। प्रजनन-क्षमता अभी भी युगल तक ही सीमित थी परन्तु जीवन संघर्ष के लिए संख्या बल की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अपराध-वृत्ति का प्रसार हुआ और अब अपराधी को कबीले के नियन्त्रण में रखने के लिए 'हा मा धिक्' अर्थात् "खेद है कि तुमने ऐसा अपराध किया, अब मत करना, और तुम्हें धिक्कार है जो रोकने पर भी अपराध करते हो", की व्यवस्था समुपस्थित हुई। अब मानव सहज प्रकृत अवस्था को बहुत पीछे छोड़ चुका था तथा असंस्कृत अवस्था से सभ्य या स्वयं प्रयास से संस्कारित जीने की अवस्था (Civilised Stage), अर्थात् कर्मभूमि, की ओर क्रमशः बढ़ रहा था।

प्रजा को जीने का उपाय बताने की अपेक्षा से मनु, मानवों को कुल की भांति इकठ्ठा रहने का उपदेश देने की अपेक्षा से कुलकर, अनेक वंश स्थापित करने की अपेक्षा से कुलधर, और सभ्यता के युग के आदि में नियामक होने की अपेक्षा से युगादि-पुरुष, की संज्ञा से ये सभी कुलकर सार्थक थे। ऋषभ को प्रजापति भी कहा गया क्योंकि वह प्रजा को जीने की राह दिखाकर और उसमें प्रकृति से संघर्ष की सामर्थ्य जुटाकर प्रजा का पालन करने में समर्थ थे।

शलाका पुरुष युग

शलाका पुरुष से आशय है कि मानव सभ्यता के विकास में उन्होंने विशिष्ट योगदान किया। शलाका का सामान्य अर्थ कुन्जी है, अर्थात ये शलाका पुरुष मानवीय सभ्यता के विकास में कुंजी सदृश (Key Person) थे। २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वासुदेव और ६ प्रतिवासुदेव के रूप में ६३ शलाका पुरुषों का उल्लेख किया गया है।

तीर्थंकर शास्ता हैं। चक्रवर्ती सार्वभौम सत्ता का प्रतीक हैं। बलदेव या बलराम सद्प्रवृत्ति का प्रतीक हैं। वासुदेव या नारायण सद्-असद् प्रवृत्ति का प्रतीक हैं और

असद् के ऊपर सद् की विजय सूचित करते हैं। प्रतिवासुदेव या प्रतिनारायण असद् प्रवृत्ति का प्रतीक हैं और अन्ततः वासुदेव या नारायण से पराभूत होते हैं जो असत् के ऊपर सत् की विजय का द्योतक है।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव

नाभिराज के समय में ही भोगभूमि का अवशिष्ट प्रभाव भी समाप्तप्रायः हो गया और उन्होंने स्वेच्छा से अपने पुत्र ऋषभ को शासन व्यवस्था सुपुर्द कर दी ताकि वह मानव समदाय को कर्मभूमि में प्रवृत्त होने का मार्ग बता सकें। कर्मभूमि मनुष्य का प्रकृति से संघर्ष करने, उसे अपने अनुकूल बनाने और उस पर विजय प्राप्त कर अपने श्रम से उससे आवश्यक भोजन, सम्पदा तथा सम्पदा-जन्य सुख-सुविधा बुद्धि एवं विवेक के आश्रय से सम्पादित करने का, विस्तीर्ण उद्योग था। असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प रूपी षट्कर्मों में मनुष्यों को प्रवृत्त करके ऋषभ ने कर्मभूमि या मानव सभ्यता के विकास का प्रारंभ किया। असि के माध्यम से स्वरक्षा के लिए सन्नद्ध होना, मसि के माध्यम से बौधिक विकास करना, कृषि के माध्यम से भूमि से स्वयं धान्य उपजाना, विद्या के माध्यम से ललित कलाओं का सम्पादन करना, वाणिज्य के माध्यम से आर्थिक व्यवस्था का सूत्रपात करना और शिल्प के माध्यम से यांत्रिक-वैज्ञानिक प्रवृत्ति का प्रारम्भ किया जाना, अभिप्रेत था।

जनसंख्या में नर-नारी अनुपात को नियमित करने और युगलिया व्यवस्था समाप्त होने के कारण स्त्री का भी उत्पादन इकाई के रूप में उपयोग किये जाने की दृष्टि से समाज व्यवस्था की आवश्यकता अनुभूत हुई। संघर्षरत व्यवस्था में बहुत से युगल स्वाभाविक रूप से विच्छिन्न हो गये और मात्र नारी ही रह गई, अतः विवाह की संस्था का आविर्भाव हुआ। ऋषभदेव ने स्वयं अपनी युगलिया सुमंगला (जिसे यशस्वती, नन्दा या देवी के नाम से भी अभिहित किया गया है) के अतिरिक्त एक अन्य स्त्री सुनन्दा से विवाह कर इस सामाजिक संस्था का प्रारम्भ किया। सुनन्दा से युगलिया बाहुबली और सुन्दरी ने जन्म लिया, तथा नन्दा या सुमंगला से युगलिया भरत और ब्राह्मी ने, तथा तदनन्तर अन्य ९८ पुत्रों ने, जन्म लिया। जिस अन्य स्त्री से ऋषभ ने विवाह किया वह स्पष्ट ही किसी युगलिया की बिछुड़ी हुई सहचरी थी। भरत और सुन्दरी, तथा बाहुबली और ब्राह्मी, के सम्बन्ध का भी उल्लेख है जो सामी (Semitic) परम्परा के अनुरूप है। भरत ने ९६००० स्त्रियों से विवाह किया - यह भी इस बात का द्योतक है कि चक्रवर्ती पद के लिए दिग्विजय के दौरान सम्भवतः उतनी स्त्रियों के युगलिया पुरुष काल कवलित हो गये थे और वे स्वयं चक्रवर्ती की सम्पत्ति का अंश बन गई थीं।

ब्राह्मी को भगवान ने अक्षर ज्ञान दिया और सुन्दरी को अंक ज्ञान, तथा इस प्रकार लेखन कला तथा अंक विद्या का प्रारम्भ हुआ और इनके आश्रय से ज्ञान-विज्ञान का विकास हुआ।

समाज में सामंजस्य स्थापित करने और आर्थिक व्यवस्था को नियोजित करने के उद्देश्य से उन्होंने मानव समुदाय को क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कर्मियों में परिगणित करने का मार्ग भी दिखलाया। मनुष्यों में बढ़ती हुई अपराध वृत्ति को नियन्त्रित करने के लिए दण्ड विधान का सूत्रपात भी किया और व्यवस्था के उच्छेदकों के लिए बंधन एवं वध के दण्ड का प्राविधान किया।

समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था और शासन-व्यवस्था के सूत्रों को एक आधार देने के बाद ऋषभ ने आध्यात्मिक अभ्युदय का मार्ग भी प्रशस्त किया। गृह-त्यागी तपस्वी के रूप में उन्होंने मनुष्यों को सम्पत्ति मोह से विरत होने और अपने शुद्ध स्वरूप को पहचान कर सम्पूर्ण चैतन्य स्थिति की प्राप्ति की दिशा में मार्ग-दर्शन करने के लिए धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन किया तथा अन्ततः स्वयं सिद्धत्व को प्राप्त हुए। जैन परम्परा के वर्तमान हुण्डा-अवसर्पिणी कालचक्र के वह प्रथम तीर्थंकर हुए।

ऋषभ का उल्लेख प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य **ऋग्वेद** में है। सभी भारतीय पुराणकारों ने उनका स्मरण किया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के त्रिविध गुणों का उनमें समावेश बताया गया है। मनु, प्रजापति, अवतार और तीर्थंकर के रूप में सभी भारतीय परम्पराओं ने उनका समादर किया है। भारत-वाह्य सामी परम्परा में 'नबी' 'नाभेय' का उसी प्रकार रूपान्तर प्रतीत होता है जिस प्रकार "बुद्ध" का "बुत", और नबी के रूप में नाभेय ऋषभ मानव को मार्ग दर्शन प्रदान करने वाले प्रथम शलाका पुरुष (Key Person) थे। सामी परम्परा में हजरत नूह का सामंजस्य यदि स्वायम्भू मनु से सहज है तो हजरत इब्राहीम के प्रथम नबी के रूप में तीर्थंकर ऋषभदेव से साम्य को सांकेतिक मानना दुष्कर नहीं प्रतीत होता। प्रथम चक्रवर्ती भरत का सादृश्य शक्तिशाली नमरुद से चीन्हा जा सकता है। ये सब इस बात को इंगित करते हैं कि मानव का आदि-कालीन इतिहास विगत चार-पांच हजार वर्षों के अनुश्रुति गम्य ऐतिह्य से कहीं सुदूर अतीत में मानव के स्मृति-कोष में संचित रहा और मनुष्य अपने परिवेश की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप उसके विशिष्ट पात्रों का नामकरण एवं स्वरूप निर्धारण करता रहा। इस स्मृति-कोष में ऋषभदेव का मानव को कर्मभूमि में प्रवृत्त कर सभ्यता की ओर अग्रसर करने में एक शलाका पुरुष का कार्य था। अतः किसी-न-किसी रूप में सभी परम्पराओं में उनका स्मरण किया जाता रहा।

प्रथम चक्रवर्ती भरत

जैनेतर भारतीय पौराणिक गाथाओं में स्वायम्भू मनु को मानव सभ्यता का आदि प्रस्तोता माना गया है। इनके पुत्र प्रियव्रत और पौत्र नाभि थे। नाभि ने इस भूखण्ड को 'अजनाभ' संज्ञा प्रदान की। नाभि की पत्नी मरुदेवी से वृषभ या ऋषभ हुए और ऋषभ के एक सौ पुत्रों में भरत ज्येष्ठ थे जिन्हें ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते पिता का राज सिंहासन प्राप्त हुआ। भरत अपने पितामह नाभि से भी अधिक प्रतापी थे और अब उनके नाम से यह भूखण्ड 'भारतवर्ष' कहलाने लगा।

'भरत' का अर्थ होता है 'भरण और रक्षण करने वाला'। यह सूचित करता है कि भरत ने एक व्यवस्था का नियमन किया जिसने तत्कालीन मानव जाति को एक व्यवस्थित संगठन प्रदान किया ताकि प्रकृति को मानव अपने अनुकूल बना सके और अन्य प्राणि समुदायों से अपनी रक्षा कर सके। व्यक्ति के रूप में भरत की ऐतिहासिकता सुनिश्चित करना सम्भव नहीं है, परन्तु सत्ता की सर्वोच्चता और लौकिक वैभव के प्रकर्ष की एक अवधारणा के रूप में इसे एक ऐतिहासिक तथ्य माना जा सकता है।

जैन एवं जैनेतर पौराणिक एवं अन्य कथा साहित्य में भरत के सम्बन्ध में जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित निष्कर्ष प्रतिभासित होते हैं -

१. मानव सभ्यता के आदि युग में एक ऐसा पुरुष हुआ जिसने मानवीय संगठन को व्यवस्थित कर सत्ता का एक स्वरूप प्रतिष्ठापित किया।

२. अपनी जाति या समुदाय का भरण और रक्षण करने की अपेक्षा से उसे 'भरत' संज्ञा दी गई।

३. सत्ता के सर्वोच्च प्रकर्ष के रूप में चक्रवर्ती की सार्वभौम सत्ता की कल्पना की गई।

४. सत्ता अविभाज्य रहे इसलिये ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार के सिद्धान्त की प्रस्तावना की गई।

५. सभी प्रकार की निधियां चक्रवर्ती के अधीन करके उसका आर्थिक संसाधनों पर सम्पूर्ण प्रभुत्व स्वीकार किया गया।

६. स्त्री को सम्पत्ति, भोग्या और ऐश्वर्य का प्रतीक माना गया, और इसकी पुष्टि स्वरूप ९६,००० रानियों की कल्पना की गई।

७. जिस समयावधि में इन पुराण कथाओं की रचना हुई, उस समय के भौगोलिक ज्ञान के अनुसार रचनाकारों ने छह खण्ड पृथ्वी को भारतीय प्रायद्वीप में ही परिसीमित कर दिया। आज का कथाकार इस छह खण्ड को वर्तमान में अभिज्ञात छह महाद्वीपों से समीकृत करना चाहेगा।

८. सत्ताधारी के लिये अपने अधिकार का उपयोग अनासक्त भाव से करना अभीष्ट है ताकि जनता में व्यवस्था की निष्पक्षता और नियम-निष्ठा के प्रति विश्वास बना रहे।

६. सत्ता निष्कण्टक होनी चाहिए, अतः सत्ता के प्रति दावेदारों (Contenders) को पराभूत किया जाना अपेक्षित है और इसके लिए कि वे रास्ते से हट जायें तथा आगे भी संकट न पैदा करें, सभी उपाय क्षम्य एवं अनुमन्य हैं।

उपरोक्त विवेचन चक्रवर्ती भरत के व्यक्तित्व को एक वैचारिक ऐतिहासिकता प्रदान करता प्रतीत होता है। यह वैचारिक अवधारणा किसी भौगोलिक सीमा से आबद्ध नहीं थी वरन् यह विश्वव्यापी थी और विभिन्न भूभागों में वहां के स्थानिक परिवेश के सापेक्ष उसकी व्याप्ति हुई।

अन्य शलाका पुरुष

२. तीर्थंकर अजितनाथ - इनके तीर्थ में द्वितीय चक्रवर्ती सगर हुए।

३. तीर्थंकर संभवनाथ

४. तीर्थंकर अभिनन्दननाथ

५. तीर्थंकर सुमतिनाथ

६. तीर्थंकर पद्मप्रभ

७. तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ

८. तीर्थंकर चन्द्रप्रभ

९. तीर्थंकर पुष्पदंत

१०. तीर्थंकर शीतलनाथ

११. तीर्थंकर श्रेयांसनाथ - इनके तीर्थ में प्रथम बलदेव (बलभद्र) विजय, वासुदेव (नारायण) त्रिपृष्ठ और प्रति-वासुदेव (प्रति-नारायण) अश्वग्रीव हुए।

१२. तीर्थंकर वासुपूज्य - इनके तीर्थं में द्वितीय बलदेव अचल, वासुदेव (नारायण) द्विपृष्ठ और प्रति-वासुदेव (प्रति-नारायण) तारक हुए।

१३. तीर्थंकर विमलनाथ - इनके तीर्थ में तृतीय बलदेव सुधर्म, वासुदेव स्वयम्भू और प्रति-वासुदेव मेरक हुए।

१४. तीर्थंकर अनन्तनाथ - इनके तीर्थ में चतुर्थ बलदेव सुप्रभ, वासुदेव नारायण पुरुषोत्तम और प्रति-वासुदेव मधुसूदन या मधुकैटभ हुए।

१५. तीर्थंकर धर्मनाथ - इनके तीर्थ में तृतीय एवं चतुर्थ चक्रवर्ती मघवा और सनत्कुमार हुए। इन्हीं के तीर्थ में पंचम बलभद्र सुदर्शन, वासुदेव पुरुषसिंह और प्रति-वासुदेव मधुक्रीड़ हुए।

१६. तीर्थंकर शांतिनाथ - यह पंचम चक्रवर्ती भी थे।

१७. तीर्थंकर कुन्थुनाथ - यह स्वयं छठे चक्रवर्ती थे।

१८. तीर्थंकर अरनाथ - यह स्वयं सातवे चक्रवर्ती थे और इनके तीर्थ में आठवें चक्रवर्ती सुभौम भी हुए। छठे बलदेव नन्दीषेण, वासुदेव पुण्डरीक और प्रति-वासुदेव निशुम्भ भी हुए।

१९. तीर्थंकर मल्लिनाथ - इनके तीर्थ में नवें चक्रवर्ती पद्म, तथा सातवें बलदेव नन्दिमित्र, वासुदेव दत्त और प्रति-वासुदेव बलि हुए।

२०. तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ - इनके तीर्थ में आठवें बलदेव राम, वासुदेव लक्ष्मण और प्रति-वासुदेव रावण हुए। राम पद्ममुनि के रूप में समादृत हैं।

२१. तीर्थंकर नमिनाथ - इनके तीर्थ में दसवें चक्रवर्ती हरिषेण और ग्यारहवें चक्रवर्ती जयसेन हुए।

२२. तीर्थंकर नेमिनाथ - इनके तीर्थ में बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, और नवें बलदेव बलराम, वासुदेव कृष्ण और प्रति-वासुदेव जरासंध हुए।

२३. तीर्थंकर पार्श्वनाथ - इन्होंने चातुर्याम धर्म की स्थापना की, जिसका विस्तार २५० वर्ष पश्चात् हुए अंतिम तीर्थंकर महावीर ने किया।

२४. तीर्थंकर महावीर - काल-चक्र के प्रवृत्त कल्प के अवसर्पिणी काल-खण्ड के चतुर्थ काल में जब तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रह गये थे तो कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या को इस काल-खण्ड के चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर ने निर्वाण लाभ किया था।

बारह चक्रवर्तियों में हरिषेण और जयसेन स्वर्ग गये तथा सुभौम और ब्रह्मदत्त नरकगामी हुए। शेष आठ मोक्षगामी हुये जिनमें तीन तीर्थंकर भी थे।

सभी बलदेव या बलभद्र मोक्षगामी थे। सभी वासुदेव या नारायण और प्रति-वासुदेव (प्रति-नारायण) नरकगामी थे। प्रति-वासुदेव के नामों में कुछ भिन्नता भी मिलती है परन्तु वह विशेष विचारणीय नहीं है।

महावीर के साथ शलाका पुरुष युग समाप्त हो जाता है।

तीर्थंकर महावीर

वर्तमान में भगवान महावीर का तीर्थ चल रहा है। श्रमण जैन परम्परा में महावीर चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर मान्य हैं।

वर्धमान महावीर का निर्वाण जैन काल-गणना का विशिष्ट पथ-चिह्न है। अनुश्रुति के अनुसार काल-चक्र के प्रवृत्त कल्प के अवसर्पिणी काल खण्ड के चतुर्थ काल में जब तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रह गये थे तो कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या को इस काल-खण्ड के चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर ने निर्वाण लाभ किया था। परम्परा के अनुसार यह तिथि विक्रम सम्वत् से ४७० वर्ष पहले और शक सम्वत् से ६०५ वर्ष ५ माह पूर्वगत थी, अर्थात् ईस्वी सन् से ५२७ वर्ष पहले यह घटना घटी थी। महावीर ने ७१ वर्ष ६ माह १८ दिन की आयु पाई और तदनुसार उनका जन्म चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को ईस्वी सन् से ५९९ वर्ष पहले हुआ था।

भगवान महावीर के जन्म के समय उत्तर भारत में कोसल, मगध, वत्स और अवन्ति में राजतंत्रात्मक सत्तायें संगठित हो रही थीं परन्तु वज्जिसंघ के रूप में एक शक्तिशाली गणतंत्र भी विद्यमान था। वज्जिसंघ आठ कुलों का संघ था जिसके सभी गण सदस्य "राजा" कहे जाते थे। इन कुलों में लिच्छवि और ज्ञातृ कुलों से महावीर का सम्बन्ध था। ज्ञातृवंश और काश्यप गोत्र के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ तथा उनकी पत्नी त्रिशलादेवी प्रियकारिणी क्रमशः महावीर के पिता और माता थे। महावीर का जन्म वैशाली के निकट स्थित कुण्डग्राम (क्षत्रियकुण्ड) में हुआ था। तीस वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को ईस्वी पूर्व ५६९ में महावीर ने गृह त्याग किया। बारह वर्ष तक उन्होंने तप साधना की और ४२ वर्ष की आयु में वैशाख शुक्ल दशमी को ईस्वी पूर्व ५५७ में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। अब वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अर्हत् परमात्मा हो गये। दिगम्बर परम्परा के अनुसार राजगृह (पंचशैलपुर) में स्थित विपुलाचल पर्वत पर श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को उन्होंने अपना सर्वप्रथम उपदेश ऊँ-कार रूप दिव्य ध्वनि के रूप में देकर अपने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। दिव्य ध्वनि को गौतम गणधर शब्द रूप में ग्रथित करके लोकभाषा में महावीर के उपदेश को प्रसारित करते थे। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भगवान स्वयं ही लोकभाषा में अपना उपदेश देते थे। तीस वर्ष तक उन्होंने स्थान-स्थान पर विहार कर लोगों को अपने उपदेश से लाभान्वित किया।

महावीर के उपदेशों का सार अहिंसावाद, कर्मवाद, साम्यवाद और स्याद्वाद है। इन उपदेशों के द्वारा उन्होंने करुणा, पुरुषार्थ, समानता और विवेक-जन्य सहिष्णुता को मानवीय आचरण का आधार निर्दिष्ट किया। सभी प्राणियों को आत्म-कल्याण करने का समान अवसर प्रदान करने की दृष्टि से उनकी धर्म-सभाओं को **समवसरण** कहा गया।

महावीर के प्रधान शिष्य ग्यारह गणधर थे, जिनमें प्रधान इन्द्रभूति गौतम थे। अन्य गणधरों के नाम अग्निभूति, वायुभूति, शुचिदत्त (आर्यव्यक्त), सुधर्मा, मण्डिक (मंडित), मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल, मेतार्य और प्रभास हैं। ये सभी ब्राह्मण थे और वेद शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित थे, परन्तु उन्होंने महावीर के उपदेशों से प्रभावित होकर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था और वे श्रमण परम्परा में दीक्षित हो गये थे। ये गणधर महावीर के मुनि संघ के नेता थे। महासती चन्दना उनके आर्यिका संघ की अध्यक्षा थीं। मगध सम्राट श्रेणिक-बिंबिसार उनके प्रमुख श्रावक थे और श्रेणिक की पत्नी साम्राज्ञी चेलना श्राविका संघ की नेत्री थीं।

महावीर के चतुर्विध संघ में साधु समुदाय में मुनि और आर्यिका तथा गृहस्थ समुदाय में श्रावक और श्राविका थे। अनुश्रुति के अनुसार उनके जीवन काल में उनके लगभग पांच लाख भक्त अनुयायी हो गये थे जो उनके द्वारा सुव्यवस्थित चतुर्विध संघ के सदस्य थे। उनमें सभी वर्गों एवं जातियों के स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे।

महावीर के निर्वाण के बाद जैन संघ का नायकत्व उनके प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम को प्राप्त हुआ और उन्होंने महावीर के उपदेशों को श्रृंखलाबद्ध व्यवस्थित एवं वर्गीकृत किया, कहा जाता है। इन्हें महावीर स्वामी से १२ वर्ष बाद निर्वाण प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् महावीर के ही एक अन्य गणधर सुधर्माचार्य संघनायक हुए और निर्वाण प्राप्त होने तक १२ वर्ष उन्होंने नायकत्व किया। तत्पश्चात् महावीर निर्वाण संवत् २४ में सुधर्माचार्य के शिष्य जम्बूस्वामी जैन संघ के नायक हुए और उन्होंने ३८ वर्ष तक संघ का नायकत्व किया। जम्बूस्वामी ने महावीर संवत् ६२ (ईस्वी पूर्व ४६५) में मोक्ष लाभ किया। महावीर की शिष्य परम्परा में जम्बूस्वामी अन्तिम केवलि थे। श्वेताम्बर परम्परा में जम्बूस्वामी को ही महावीर के उपदेशों को आगम रूप में संकलित करने का श्रेय दिया गया है।

जम्बूस्वामी के बाद दिगम्बर परम्परा के अनुसार विष्णुकुमार, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ने क्रमशः संघ का नेतृत्व किया। ये पांचों श्रुतकेवली थे अर्थात् उन्हें महावीर द्वारा उपदिष्ट सम्पूर्ण श्रुत का यथावत् ज्ञान था। भद्रबाहु दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में अंतिम श्रुतकेवली के रूप में मान्य हैं जबकि उनसे पहले चार श्रुतकेवलियों के नाम श्वेताम्बर परम्परा में भिन्न हैं यथा - प्रभव, स्वयंभव, यशोभद्र और सम्भूतविजय। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु की देहमुक्ति दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर संवत् १६२ (ई.पू. ३६५) में तथा श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार महावीर संवत् १७८ (ई.पू.३४६) में मानी जाती है। भद्रबाहु के बाद महावीर द्वारा उपदेशित अंग-पूर्वों का ज्ञान धीरे-धीरे विच्छिन्न होने लगा।

भगवान महावीर से प्रभावित तत्कालीन सत्ताधीशों में वज्जि संघ के अध्यक्ष राजा चेटक तथा उनका परिवार और मगध के नरेश श्रेणिक-बिंबिसार तथा उनके पुत्र मन्त्रीश्वर अभय और उत्तराधिकारी कुणिक-अजातशत्रु का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। श्रेणिक-बिंबिसार ने अपने लगभग ५० वर्ष के सुदीर्घ राज्यकाल में मगध साम्राज्य की सुदृढ़ नींव जमा दी थी। कहा जाता है कि मगध की राजधानी राजगृह में महावीर का समवसरण २०० बार आया था और इन समवसरणों में श्रेणिक ने गौतम गणधर के माध्यम से भगवान से एक-एक करके ६०,००० प्रश्न

किये थे और उन प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर ही विपुल जैन-साहित्य की रचना हुई।

उवासगदसाओ सुत्त (उपासकदशा सूत्र) में महावीर के दश सर्वश्रेष्ठ साक्षात् उपासकों एवं परम भक्तों का वर्णन प्राप्त होता है। ये सभी सद्गृहस्थ थे और गृहस्थावस्था में रहते हुए ही धर्म का पालन करते थे। उनके नाम हैं आणंद, कामदेव, चुलणीपिता, सुरादेव, चुल्लसय, कुण्डकोलिय, सद्दालपुत्त, महासतय, नंदिणीपिया और लेइयापिता। इनमें से सद्दालपुत्त जाति से शुद्र और कर्म से कुम्भकार था। अन्य सभी श्रावक श्रेष्ठि वर्ग से थे। चार अन्य श्रेष्ठि पुत्रों का भी उनके परम-भक्त के रूप में विशेष उल्लेख है - राजगृह के सुदर्शन सेठ, शालिभद्र, धन्ना और जम्बूकुमार। ये जम्बूकुमार ही अन्तिम केवली थे। इन भक्तों के विषय में जो कथायें जैन साहित्य में मिलती हैं उनका उद्देश्य गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओं को त्याग एवं संयम के मार्ग पर अग्रसर करने के लिए प्रेरित करना रहा प्रतीत होता है।

श्रुत ज्ञान

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायों में यह सामान्य मान्यता है कि महावीर को ऋजुकूला के तट पर स्थित जृम्भिक ग्राम में शाल वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुये केवलज्ञान की उपलब्धि वैशाख शुक्ल दशमी को १२ वर्ष ६ मास व १५ दिन के अपने साधना काल के उपरान्त हुई थी। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी महावीर का जन्म दिवस मान्य है जो ईस्वी सन् से ५६६ वर्ष पहले माना जाता है। उनको केवलज्ञान की उपलब्धि ४२ वर्ष की आयु में ईस्वी सन् से ५५७ वर्ष पहले हुई। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार भगवान की देशना केवलज्ञान प्राप्ति के तुरन्त बाद ही प्रारंभ हो गयी, परन्तु दिगम्बर मान्यता के अनुसार देशना का प्रारंभ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को राजगृह में विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि से हुआ।

दिगम्बर आम्नाय में यह मान्यता है कि अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा दिव्य ध्वनि के माध्यम से उपदिष्ट ज्ञान को उनके प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम द्वारा शब्द रूप में ग्रथित किया गया था। गौतम स्वामि द्वारा ग्रथित ज्ञान ४ अनुयोगों में संकलित माना जाता है। प्रथमानुयोग में महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित पुराण और चरित आते हैं। करणानुयोग में लोक-अलोक और काल से सम्बन्धित विवेचन है। चरणानुयोग में श्रावकों और साधुओं के चारित्र सम्बन्धी निर्देश हैं। द्रव्यानुयोग में तत्वदर्शन का विवेचन है जो जैन दर्शन के आध्यात्मिक पक्ष को प्रस्तुत करता है।

भगवान द्वारा जो उपदेश दिये गये थे वे १२ अंगों में विभक्त थे और इसीलिए उनके द्वारा दिये गये उपदेशों को **द्वादशांग श्रुत** कहा जाता है। सम्पूर्ण **द्वादशांग श्रुत** का ज्ञान गणधर इन्द्रभूति गौतम को था और दिगम्बर आम्नाय की मान्यता है कि उन्होंने ही इस श्रुत ज्ञान को १२ अंगों या विभागों में ग्रथित किया।

श्वेताम्बर आम्नाय में मान्यता कुछ भिन्न है। इस मान्यता के अनुसार जम्बूस्वामि ने गणधर सुधर्मा से प्राप्त ज्ञान को संकलित किया। महावीर के बाद उनके प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम संघ-नायक रहे। गौतम के पश्चात् सुधर्मा संघ-नायक हुए। सुधर्मा भगवान के ११ गणधरों में से एक थे। इनके कार्यकाल के विषय में दोनों आम्नायों में मतभेद है। दिगम्बर आम्नाय के अनुसार गौतम का नायकत्व काल १२ वर्ष था और तत्पश्चात् सुधर्मा का नायकत्व काल भी १२ वर्ष का था, परन्तु श्वेताम्बर आम्नाय में गौतम का कार्यकाल तो १२ वर्ष ही है, सुधर्मा का कार्यकाल मात्र ८ वर्ष है। तथापि तीसरे संघ-नायक के रूप में जम्बूस्वामि की मान्यता दोनों आम्नायों में है। दिगम्बर आम्नाय के अनुसार उनका कार्यकाल ३८ वर्ष का था और श्वेताम्बर आम्नाय के अनुसार ४२ वर्ष का। दोनों आम्नायों में यह मान्यता भी है कि महावीर के बाद तीन केवली हुये और वे गौतम, सुधर्मा और जम्बू थे।

यह उल्लेखनीय है कि महावीर के सभी गणधर (मुख्य शिष्य) वेदज्ञ ब्राह्मण थे, परन्तु जम्बूस्वामि चम्पा के एक श्रेष्ठी के पुत्र थे, अर्थात् वैश्य वर्ण के थे, और यद्यपि वह महावीर के प्रभाव से उनके शिष्य हो गये थे परन्तु उनकी गणना गणधरों में नहीं थी। दोनों ही आम्नायों के अनुसार सुधर्मा के बाद जम्बूस्वामि संघ-नायक हुये। दोनों ही आम्नायों के अनुसार जम्बूस्वामि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था और महावीर के निर्वाण के ६२ वर्ष बाद ईस्वी पूर्व ४६५ में मोक्ष प्राप्त हुआ। श्वेताम्बर आम्नाय में महावीर की द्वादशांग वाणी को संकलित करने का श्रेय जम्बूस्वामि को दिया गया है। जम्बूस्वामि ने महावीर के उपदेशों का प्रत्यक्ष बोध के आधार पर संकलन नहीं किया, वरन् उन्होंने कहा है कि "गुरु सुधर्मा स्वामी से गौतम के प्रश्नों का महावीर द्वारा दिया गया उत्तर, जैसा सुना"।

श्वेताम्बर आम्नाय में महावीर द्वारा उपदेशित १२ अंगों में से प्रथम ११ अंग संरक्षित बताये जाते हैं जिनका उपलब्ध रूप महावीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष बाद, अर्थात् ४५३ या ४६६ ई. के लगभग, वल्लभी में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा संकलित किया गया। दिगम्बर आम्नाय इन ११ अंगों को मान्यता नहीं देती और इन्हें लुप्त मानती है तथा केवल १२वें अंग के दृष्टि प्रवाद खण्ड को ही संरक्षित मानती है। श्वेताम्बर आम्नाय १२वें अंग को लुप्त मानती है।

दोनों आम्नायों के अनुसार द्वादश अंगों के नाम प्रायः समान है, परन्तु उनकी पद संख्या और अक्षर संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है। इन अंगों के नाम निम्नलिखित है :

१. आयारो (आचारांग) - इसमें श्रमण निर्ग्रन्थों के आचार सम्बन्धी निर्देश हैं।

२. सुयगडो (सूत्रकृतांग) - इसमें स्वमत, परमत, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष आदि तत्वों का निरूपण है और महावीर के समय प्रचलित ३६३ पाखण्ड मतों पर विचार किया गया है।

३. ठाणं (स्थानांग) - इसमें स्व-समय, पर-समय, स्व-पर उभय समय, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक आदि पर विचार किया गया है।

४. समवाओ (समवायांग) - इसमें द्रव्य की अपेक्षा से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश आदि के क्षेत्र, काल तथा भाव की दृष्टि से विवरण दिये गये हैं। महापुरुषों में प्रतिवासुदेव की गणना नहीं की गई है, अतः शलाका पुरुषों की संख्या ५४ रह जाती है।

५. विवाहपण्णत्ती (वियाह पण्णत्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति, विपाक् प्रज्ञप्ति, विक्खा पण्णत्ति) - यह प्रश्नोत्तर शैली में है। इसमें गौतम द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर भगवान देते हैं। प्रश्न विविध विषयक है। इसका दूसरा नाम भगवतीसूत्र (भगवई) भी है।

६. नायाधम्मकहाओ (ज्ञातृधर्मकथा) - इसमें उदाहरण प्रधान धर्म कथाएं दीं गई हैं।

७. उवासगदसाओ (उपासकदशा) - इसमें दस उपासक गृहस्थों के सदाचार पूर्ण जीवन का वर्णन किया गया है।

८. अंतगडदसाओ (अन्तकृत्दशा) - इसमें विभिन्न श्रेणी के साधकों का वर्णन है।

९. अणुत्तरोववाइयदसाओ (अनुत्तरोपपातिकदशा) - इसमें ऐसे महापुरुषों का चरित दिया गया है जिन्होंने घोर तपश्चरण और विशुद्ध संयम की साधना के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त कर अनुत्तरविमानों में देवत्व प्राप्त किया।

१०. पण्हावागरणाइं (प्रश्न व्याकरण) - इसमें अहिंसा, सत्य, अदत्तादान, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि पांच धर्मद्वारों अर्थात् संवरद्वारों का वर्णन किया गया है।

११. विवागसुयं (विपाक सूत्र) - इसमें उदाहरण के माध्यम से कर्म सिद्धांत को स्पष्ट किया गया है।

१२. दिट्ठिवाओ (दृष्टिवाद) - इसमें संसार के समस्त दर्शनों और नयों का निरूपण किया गया है।

वाचना

भद्रबाहु के बाद दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नाय की आचार्य परम्पराओं में पूर्ण भेद हो जाता है। दिगम्बर आम्नाय में महावीर के बाद ६८३ वर्ष में ३३ आचार्य संघ-नायक हुए, परन्तु उनमें इन्द्रभूति गौतम, सुधर्मा, जम्बू और भद्रबाहु को छोड़कर श्वेताम्बर परम्परा में मान्य किसी संघ-नायक का नाम नहीं है। श्वेताम्बर आम्नाय में महावीर निर्वाण समबत् ६०९ तक १९ आचार्यों का नाम है जो सभी इन्द्रभूति गौतम, सुधर्मा, जम्बू और भद्रबाहु को छोड़कर दिगम्बर आम्नाय की सूची से भिन्न हैं। भद्रबाहु के बाद श्वेताम्बर परम्परा में स्थूलिभद्र (स्थूलभद्र) का उल्लेख है और वहीं से श्वेताम्बर आम्नाय की भिन्नता प्रारंभ होती है। स्थूलभद्र का आचार्यत्व काल महावीर निर्वाण संवत् १७० से २१५ (ईस्वी पूर्व ३५७-३१२) रहा; वह अंतिम चतुर्दश-पूर्वी थे और भद्रबाहु के शिष्य रहे थे।

श्वेताम्बर आम्नाय के अनुसार स्थूलभद्र की शिष्य परम्परा में वज्रसेन के समय महावीर सम्वत् ६०६ या ६०९ (७९ या ८२ ईस्वी सन्) में जैन संघ अंतिम रूप से दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में विभक्त हो गया।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष की समाप्ति के बाद महावीर सम्वत् १६० (३६७ ई.पू.) में पाटलिपुत्र में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें श्रुत का वाचन किया गया। इसमें भद्रबाहु, तथा अन्य कोई दिगम्बर आचार्य भी, सम्मिलित नहीं हुए। अतः यह प्रथम वाचना निष्फल रही। पुनः उसी परम्परा में महावीर सम्वत् ८२७-८४० (३००-३१३ ई.) में आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में मथुरा में एक वाचना सम्मेलन हुआ और वल्लभी में भी नागार्जुन सूरि की अध्यक्षता में एक सम्मेलन हुआ। परन्तु दोनों में मतभेद होने के कारण अंतिम निर्णय नहीं हो सका। अन्ततः देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में महावीर सम्वत् ९८० या ९९३ (४५३ या ४६६ ई.) में वल्लभी में वाचना की गई और श्वेताम्बर आगम को अंतिम रूप दिया गया जैसा कि अब उपलब्ध माना जाता है।

दिगम्बर आम्नाय में ऐसी किसी परम्परा का उल्लेख नहीं मिलता है जब महावीर के बाद उनके उपदेशों के संकलन के लिए कोई सम्मेलन किया गया हो।

खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख से यह विदित होता है कि महावीर सम्वत् ३५५ अर्थात् ईस्वी पूर्व १७२ में एक सम्मेलन द्वादश-अंगों के वाचन के लिए उड़ीसा प्रदेश के भुबनेश्वर जिले में स्थित कुमारी पर्वत (उदयगिरि) पर किया गया था। यदि

संयोगवश इस अभिलेख की जानकारी न होती तो यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना उपेक्षित ही नहीं वरन् विस्मृत भी रह जाती। इस वाचना का कोई स्थायी परिणाम नहीं निकला प्रतीत होता क्योंकि कदाचित् उस समय दिगम्बर और श्वेताम्बर विभेद के पोषक आचार्य उस सम्मेलन में उपस्थित रहे होंगे। अभिलेख में किसी भी आचार्य का नाम नहीं दिया गया है यद्यपि सभी दिशाओं से श्रमणों को उसमें आमंत्रित किया गया था **(सुकत-समण-सुविहितानं च सवदिसानं ञनिनं-तपसि-इसिनं-संघयनं)।**

मथुरा में कंकाली टीला से प्राप्त पुस्तक-धारिणी सरस्वती की लेखांकित मूर्ति प्राप्त हुई है। इस मूर्ति पर वर्ष ५४ का लेख है। वर्ष ५४ को ७८ ईस्वी के शक् सम्वत् से समीकृत किया जाता है और इसका समय १३२ ईस्वी माना जाता है। सरस्वती की यह मूर्ति गोदुहिका आसन में है। श्वेताम्बर परम्परा में यह मान्यता है कि भगवान महावीर को केवलज्ञान की प्राप्ति इसी आसन में हुई थी। यह मूर्ति यह इंगित करती है कि उस समय तक श्वेताम्बर परम्परा की यह मान्यता प्रचलित हो गई थी। सरस्वती के हाथ में पुस्तक से यह इंगित होता है कि ईस्वी सन् के प्रारम्भ में ही जैनों में ग्रन्थों के लिपिकरण की परम्परा प्रारंभ हो गयी थी। इससे यह भी सूचित होता है कि द्वादशांग श्रुत की वाचना हेतु जो सम्मेलन ई. पू. १७२ में खारवेल ने आयोजित किया था, उसके बाद भी वाचना के लिए सम्मेलन आयोजित होते रहे और संभवतः मथुरा में भी आर्य स्कन्दिल के पहले कोई वाचना सम्मेलन हुआ, जिसकी ध्वनि इस मूर्ति में प्रतीत होती है।

विकास क्रम

किसी भी जीवन्त व्यवस्था में देश और काल की अपेक्षा से उत्पन्न परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन अवश्यम्भावी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ये परिवर्तन विकास-क्रम को सूचित करते हैं, परन्तु कट्टर रूढ़िवादिता की दृष्टि से इनको व्यवस्था में विकार भी माना जाता है। जैन धर्म की वर्तमान व्यवस्था का मूल भगवान महावीर द्वारा प्रवर्तित एवं प्रतिष्ठापित स्वरूप है। उनके द्वारा उपदिष्ट श्रुतज्ञान इसकी पृष्ठभूमि और आधार है। उस ज्ञान को संरक्षित करने के बहुविधि प्रयास किये जाते रहे।

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् ६२ वर्ष में ३ संघ-नायक क्रमशः इन्द्रभूति गौतम, सुधर्मा और जम्बू हुए जिनके सम्बन्ध में कोई मतान्तर नहीं है। परन्तु जम्बूस्वामी के पश्चात् मतान्तर प्रारंभ हो जाता है। यद्यपि भद्रबाहु ८वें संघ-नायक के रूप में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में मान्य हैं, जम्बू के बाद दिगम्बर परम्परा में नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित और गोवर्धन को मान्यता दी गई है परन्तु श्वेताम्बर परम्परा में

उनके स्थान पर प्रभव, स्वयंभव, यशोभद्र और सम्भूतविजय को मान्यता दी गई है। इससे यह संकेत मिलता है कि जम्बूस्वामी के बाद ही मतभेद प्रारंभ हो गये थे तथापि भद्रबाहु को दोनों ही पक्षों ने संघ-नायक स्वीकार कर लिया था।

श्वेताम्बर परम्परा में भद्रबाहु के बाद स्थूलभद्र का उल्लेख है। स्थूलभद्र का उल्लेख दिगम्बर परम्परा में नहीं है। यह तथ्य इस बात को प्रतिभासित करता है कि भद्रबाहु के बाद स्पष्ट रूप से संघ का नायकत्व बंट गया था। भद्रबाहु के समय में मगध में १२वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा। इस दुर्भिक्ष के कारण बहुत से साधु जो आचार से बंधे थे, मगध से दक्षिण की ओर चले गये। कुछ साधु दुर्भिक्ष के क्षेत्र में रहे और उन्होंने परिस्थितियों के अनुसार अपने आचार को समायोजित कर लिया। ये जैन साधु मूल दिगम्बर साधु चर्या से अलग हो गये और दुर्भिक्ष के बाद पश्चिम दिशा में उज्जैन और मथुरा की ओर चले गये। मगध में दुर्भिक्ष की समाप्ति पर महावीर निर्वाण सम्वम् १६० (ई.पू. ३६७) में पाटलिपुत्र में श्रुत के संरक्षण के लिए एक सम्मेलन किया गया जिसमें भद्रबाहु सम्मिलित नहीं हुए और यह सम्मेलन निष्फल रहा। यह घटना इस बात को सूचित करती है कि जैन साधु संघ में अब मतभेद हो गया था परन्तु संघ भेद को स्पष्ट स्वीकृति नहीं दी गई थी। श्वेताम्बर परम्परा में १९वें पट्टधर वज्रसेन के समय में महावीर निर्वाण सम्वत् ६०३ (७६ ईस्वी) में दिगम्बर-श्वेताम्बर संघ भेद को अन्ततः मान्यता दी गई। संघ भेद के लिए महावीर सं. ६०६ (७९ ईस्वी) और म.सं. ६०९ (८२ ईस्वी) का भी उल्लेख मिलता है परन्तु ६०३, ६०६ और ६०९ यह तीनों ही सम्वत् वज्रसेन के नायकत्व काल में ही पड़ते हैं। अतः संघ भेद को ईस्वी सन् ७६ से माना जा सकता है। दिगम्बर आम्नाय के मूल ग्रन्थ **षट्खण्डागम** का प्रणयन महावीर सम्वत् ६०२ (७५ ईस्वी) में माना जाता है। यह घटना भी इस तथ्य को सूचित करती प्रतीत होती है कि प्रथम शती ईस्वी के चतुर्थ चरण में महावीर द्वारा स्थापित जैन श्रमण संघ में दिगम्बर और श्वेताम्बर साधुओं के रूप में संघ भेद स्पष्ट हो गया था।

मान्यता यही है कि भगवान महावीर द्वारा जो संघ व्यवस्था की गई थी उसमें साधु निर्ग्रन्थ दिगम्बर थे। ईस्वी पूर्व तीसरी से पहली और ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में पश्चिमोत्तर से यवन, पह्लव, शक, कुषाण, हूण आदि आक्रमणकारी हमारे देश में आये और पश्चिम भारत के प्रदेशों पर उन्होंने अपना आधिपत्य कर लिया। उस समय की परिस्थितियों को देखते हुये उन प्रदेशों में साधुचर्या में कुछ परिवर्तन आवश्यक हो गये होंगे। उन्हीं को दृष्टिगत रखते हुये धीरे-धीरे श्वेत वस्त्रधारी अर्थात् श्वेताम्बर साधुचर्या का प्रारंभ हुआ। मथुरा से पहली-दूसरी शताब्दी ईस्वी के जो पुरावशेष प्राप्त हुए है उनमें दिगम्बरत्व को ढांपने के लिए हाथ से एक वस्त्र-पट्ट लटका हुआ प्रदर्शित

है। इस प्रकार के चित्रांकन को अर्धफालक की संज्ञा दी गई है। शक सम्वत् ५४ (१३२ ईस्वी) की सरस्वती की मूर्ति पर भी अर्धफालक साधु का चित्रांकन है। इस प्रकार का चित्रांकन भी वस्त्रधारी श्वेताम्बर साधुओं की उपस्थिति का संकेत करता प्रतीत होता है।

जैन धर्म में आस्था बनाये रखने और जैन धर्म के अनुयायियों को एक साथ बांधे रखने की दृष्टि से प्रभावक आचार्यों द्वारा समय-समय पर बहुत सी व्यवस्थायें की गईं, जिनको सैद्धान्तिक दृष्टि से मान्य नहीं किया जा सकता। जिन देवी-देवताओं के प्रति अथवा अन्य अमानवीय शक्तियों के प्रति लोक-मानस में सामान्य रूप से आस्था थी, उन सभी को शनैः-शैनेः जैन देव समूह में भी सम्मिलित कर लिया गया। मनोरथ पूर्ति के लिए जो विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड प्रचलित थे, उन्हें भी जैन आराधना पद्धति में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति को भक्ति और आराधना के लिए जो सम्बल चाहियें, वे जैन धर्म में भी उपलब्ध करा दिये गये ताकि अपने आस-पास के परिदृश्य से आकर्षित होकर वह जैन धर्म से विमुख न हो जाये। इस परिप्रेक्ष्य में आराध्य अर्हन्त तीर्थंकर के अतिरिक्त शासन देवता के रूप में तथा मनोकामना पूर्ण करने वाले देवी-देवताओं के रूप में जैनों के देव समूह में भी बहुत से देवी-देवता सम्मिलित कर लिये गये, परन्तु इन देवी-देवताओं को तीर्थंकर से निम्न स्तरीय द्वितीय स्थान पर रखा गया। यह लोक संस्कृति से सम्मिश्रण का प्रतीक है।

मध्य काल में १३वीं शताब्दी से १९वीं शताब्दी तक मुसलमान शासन काल रहा। इस काल में सभी भारतीय धर्मों को संरक्षण की विशेष आवश्यकता अनुभूत हुई। मंदिर और मूर्तियों का ध्वंस किया जाने लगा। साधुओं के वेश और आचार की सुरक्षा कठिन हो गयी। उन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में दिगम्बर सम्प्रदाय में भट्टारक संस्था का प्रारंभ हुआ। भट्टारक प्रकट रूप में वस्त्रधारी होते थे और उनका कुछ आचार दिगम्बर मुनि के समान होता था। विभिन्न स्थानों पर भट्टारकों की गद्दी स्थापित हुईं जहां वे जैन धर्म के अनुयायियों का धर्म मार्ग में मार्गदर्शन करते थे। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इसी प्रकार यतियों की गद्दियां स्थापित हुईं।

इस्लाम की मंदिर-मूर्ति भंजक मानसिकता से सभी भारतीय त्रस्त थे। इस परिस्थिति में अपने धर्म के सरंक्षण के लिए जैन धर्म के अनुयायियों में भी कुछ सुधारात्मक प्रयास किये गये। दिगम्बर सम्प्रदाय में तारण पंथ अथवा समैया सम्प्रदाय की संस्थापना तारण स्वामी (१४४८-१५१५ ई.) ने की थी। इस सम्प्रदाय द्वारा मंदिरों और मूर्तियों के स्थान पर शास्त्र की पूजा का विधान किया गया। इसका व्यापक प्रभाव मध्य प्रदेश में रहा।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी गुजरात में लौंकाशाह (१४२०-१४७६ ई.) ने लौंकागच्छ की स्थापना की जो आगे चलकर स्थानकवासी सम्प्रदाय के रूप में प्रचलित हुआ। स्थानकवासी साधु मुख-पट्टी का प्रयोग करते हैं और मंदिरों एवं मूर्तियों का विरोध करते हैं। आगे चलकर इन्हीं में से भिक्खुगणी ने तेरापंथ की स्थापना की। २०वीं शताब्दी में तेरापंथ के विशेष प्रभावक आचार्य तुलसी थे।

२०वीं शती में ही दिगम्बर सम्प्रदाय में कानजी स्वामी ने कानजीपंथ की स्थापना की। इसका विशेष आग्रह शुद्ध अध्यात्मवाद पर रहा।

१९वीं-२०वीं शती में ब्रिटिश शासन काल में जैन समाज में भी जागृति की आवश्यकता अनुभूत हुई। जैन धर्म, साहित्य और कला के प्रति अभिरुचि जागृत करने के प्रयत्न किये गये और उसके लिए शोध संस्थाओं और साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था की गई। समाज में प्रचलित रूढ़ियों के परिमार्जन के लिए भी सुधारवादी प्रयत्न किये गये। सम्प्रदाय और पंथ भेद को भुलाकर सभी जैन धर्मानुयायियों को एक मंच पर लाने के प्रयास भी किये गये। इस दृष्टि से All India Jain Young Men's Association (भारत जैन महामण्डल) का गठन भी १९१२-१३ में किया गया। ये प्रयत्न भी हुए कि जैन धर्मानुयायी विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति उल्लेखनीय रूप में प्रतिष्ठापित कर सकें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक परिदृश्य के सापेक्ष जैन धर्मानुयायियों के लिए एक सर्वमान्य मंच का गठन किये जाने की आवश्यकता भी अनुभव की गई। इस सम्बन्ध में कुछ प्रयत्न किये भी जाते रहे हैं परन्तु व्यक्तिगत अहं के कारण इसका कोई सकारात्मक परिणाम सम्प्रति प्रकट नहीं हुआ है। वर्तमान परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि पंथवाद के मतभेदों से ऊपर उठकर संगठन का प्रयत्न किया जाये तथा तीर्थ आदि से सम्बन्धित विवादों को समझौते और समन्वय की भावना से निपटा लिया जाये। आचार आदि में भी वर्तमान परिस्थितियों के सापेक्ष आवश्यक परिमार्जन किया जाना अपेक्षित है ताकि भगवान महावीर द्वारा प्रवर्तित जैन धर्म के प्रति जैनेतर समुदाय में आदर, विनय और श्रद्धा का भाव बना रहे।

विशद् अध्ययन हेतु ध्यातव्यः

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा प्रणीत -

१. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि

२. प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएं

३. Religion and Culture of the Jains

(उपरोक्त तीनों भारतीय ज्ञानपीठ, १८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-११०००३ से प्रकाशित)

४. The Jaina Sources of the History of Ancient India

(मुंशीराम मनोहरलाल प. प्रा. लि., ५४ रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५ से प्रकाशित)

५. युग-युग में जैन धर्म

(प्राच्य श्रमण भारती, १२/ए, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर -२५०००१ से प्रकाशित)

डॉ. शशि कान्त द्वारा प्रणीत -

The Hathigumpha Inscription of Kharavela and The Bhabru Edict of Asoka (डी. के. प्रिन्टवर्ल्ड प्रा. लि., श्री कुंज, एफ-५२ बाली नगर, नई दिल्ली-११००१५ से प्रकाशित)

कानपुर से हमारे सुधी पाठक श्री नेमिचंद जैन द्वारा देह दान के संबंध में निम्नलिखित जिज्ञासा की गई है

Myself, my wife smt. Raj Dulari jain, and my younger brother have completed all formalities with G. S.V. M. Medical College, Kanpur, to donate our dead bodies for use of Medical students in their studies. My purpose is to get comments, reaction particularly if there is any adverse views, and secondly, more and more people should come forward to donate; along with your learned comments on this issue, from Jainism point of view.

उपरोक्त जिज्ञासा के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि चिकित्सा शास्त्रीय अध्ययन के लिए देह-दान व्यावहारिक दृष्टि से एक लोकोपकारी कार्य है। धार्मिक दृष्टि से भी इसमें कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती। आंख आदि प्रत्यारोपण योग्य अंगों का दान भी एक लोकोपकारी और करुणापरक कार्य है।

- नलिन कान्त जैन

भ. शीतलनाथ की जन्म-भूमिः मलय-भद्रपुरः एक चिंतन

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

'परवार जैन समाज का इतिहास' सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर सन १९९० में प्रकाशित हुआ। उसका अध्ययन कर रहा था। उसमें कुछ रोचक जानकारी मिली, इसमें प्रमुख इस प्रकार हैं -

१. चन्देरी, सिरोंज और विदिशा की भट्टारक परम्परा शुद्धाम्नायी थी और उनके भट्टारक परवार-पट्ट के कहे जाते थे। २. अंतिम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की आज्ञा से चन्द्रकीर्ति नामक शिष्य ने कुण्डलपुर दमोह के ध्वस्त मंदिर का जीर्णोद्धार प्रारंभ किया और उनकी मृत्यु के बाद शेष कार्य उनके शिष्य ब्र. नमिसागर जी ने कराया जो वि.सं १७५७ में पूर्ण हुआ। ३. परवार समाज के व्यक्ति गुजरात से आकर चन्देरी के आस-पास के क्षेत्रों में बसे। चन्देरी मुख्य केन्द्र रहा। ४. गजरथ चलाने की परम्परा परवार समाज द्वारा चन्देरी से प्रारम्भ हुई। गजरथ को सिंघई की पदवी देकर पगड़ी बांधने की प्रथा है। चन्देरी समाज का मुखिया पगड़ी बांधने की अधिकारी होता है। देवगढ़ के भ. शांतिनाथ की प्रतिष्ठा सं. १४९३ में हुई थी। मूर्तिलेख में "पौर पाटान्वये अष्टसाखे आहारदान दानेश्वर सिंघई लक्ष्मण" का नाम अंकित है। ५. तारणपंथ के जनक तारण स्वामी परवार समाज के थे और उनकी शिक्षा आदि चन्देरी में हुई थी। ६. आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) के बाद आचार्य गुप्तिगुप्त हुए। वे परवार जाति के थे। अर्हदबली और विशाखाचार्य उनके ही नाम हैं। ७. प्रथम मूर्तिलेख साढोरा ग्राम का है। यहां भ. पार्श्वनाथ की मूर्ति पर "संवत् ६१० वर्षे माघ सुदी ग्यारस मूलसंघे पौरपाटान्वये पाट(ल)नपुर संघई" टंकित है। ८.मूर्ति लेख और शिलालेखों में तत्कालीन राजा, भट्टारक एवं अन्य ऐतिहासिक सामग्री के प्रमाण उपलब्ध हैं। भ. शीतलनाथ जी के कल्याणक स्थलों के निर्णय के आधार भी उनमें गर्भित हैं।

भ. शीतलनाथ जी की जन्म भूमि

उत्तरपुराण के अनुसार तीर्थंकर शीतलनाथ जी का जन्म भरतक्षेत्र के मलयदेश में भद्रपुर नगर में इक्ष्वाकु वंशी दृढ़रथ राजा के यहाँ हुआ था। (पर्व ५६/१३)। **उत्तरपुराण** के अंत में दिये गये भौगोलिक शब्दकोष के अनुसार मलय मालव देश को कहा जाता है। (पृ. ६५७)। इस स्पष्टीकरण के अनुसार भद्रपुर उपनाम भद्दलपुर मालव में ही कहीं स्थित होना चाहिये। स्थानीय मान्यतानुसार भेलसा,

वर्तमान विदिशा, ही भद्रपुर है और उसे ही भ.शीतलनाथ जी की जन्मभूमि माना जाता है। यह मध्य प्रदेश में सांची के पास स्थित है। यहां की उदयगिरी की गुफाएं एवं अन्य पुरातत्वीय सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर द्वारा सन २००४ में **भ. महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर अभिनन्दन ग्रंथ** प्रकाशित हुआ था। इसका सम्पादन प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने किया है। इसके चतुर्थ खण्ड में आर्यिका चन्दनामती माताजी का एक आलेख "चौबीस तीर्थंकरों की जन्मभूमियों का परिचय" प्रकाशित हुआ है। पृ. ४/१० पर तीर्थंकर शीतलनाथ की जन्मभूमि भद्दिलपुर तीर्थ का वर्णन है। आर्यिका माताजी ने झारखण्ड प्रांत के चतरा जिले में स्थित ईटखेरी के भदिद्लपुर (भद्रकाली) ग्राम को भ. शीतलनाथ जी की जन्मभूमि होने का उल्लेख किया है। इसके विकास की प्रेरणा गणिनी ज्ञानमती माताजी ने दी है। विदिशा का उल्लेख करते हुए गणिनी माता जी का मत लिखा है कि समाज के प्रबुद्ध साधुवर्ग, विद्वदवर्य एवं श्रावक वर्ग को ऊहापोह करके निर्णय करना चाहिये। गणिनी माताजी के इस सुझाव के परिप्रेक्ष्य में यह विचार सहज ही आया कि 'विदेह-कुण्डपुर' जैसी 'मलय-भद्रपुर' की भी शोध-खोज की जानी चाहिये।

उत्तरपुराण के अनुसार भद्रपुर भरतक्षेत्र के मलय-देश में स्थित है। विदिशा मलय (मालवा) में स्थित है जबकि भद्दिलपुर (भद्रकाली) झारखण्ड में स्थित है। झारखण्ड और मालवा में विदेह-मगध जैसी निकटता नहीं है जिसे परस्पर बदला जा सके जैसा कि गणिनी जी ने विदेह-कुण्डपुर के बारे में किया। इस दृष्टि से, झारखण्ड के भद्रकाली ग्राम को किसी भी स्तर पर भ. शीतलनाथ जी की जन्मभूमि होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। दूसरे, इस स्थान पर ऐसे कोई पुरावशेष या अन्य प्रमाण नहीं मिले जिनसे यह सिद्ध हो सके कि भद्रकाली-भद्रपुर 'भद्दिलपुर' है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर पाठकों का ध्यान **'परवार जैन समाज का इतिहास'** के पृष्ठ ६४, ६० एवं १२३ में प्रकाशित स्तम्भ एवं मूर्तिलेखों की ओर आकर्षित कर रहा हूँ जिनसे यह ज्ञात होता है कि भद्दिलपुर कहां पर स्थित है। ये लेख इस प्रकार हैं :-

विदिशा जैन मंदिर के मूर्ति लेख

१ भद्दलपुर श्री राजाराम राज्ये महाजन परवाल सं.----भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवस्ताच्छीष्य भट्टारक श्री देवेन्द्र कीर्ति देव पौरपटट्ान्वये (पृ.१२३)।

२ संवत १५३४ वर्षे चैत्रमास त्रयोदश्यां गुरवासरे भट्टारक श्री महेन्द्र कीर्ति भद्दलपुरे श्री राजाराम राज्ये महाजन परवाल--श्री जिनचन्द्र (पृ.६४)।

चांदखेड़ी के श्री जिनालय के प्रवेश द्वार पर स्तम्भ में उत्कीर्ण लेख

'संवत १७४६ वर्षे माहसुदी ६ षष्टयों चन्द्रवासरान्वितायां श्री मूल संघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सवल भूमंडलवलयैक भूषण सरोजपुरे' तथा 'चेदीपुर भद्दिलपुर वतंस परवारपट्टान्वये भट्टारक श्री धर्मकीर्तिस्तत्पट्टे भ. श्री पद्यकीर्तिस्तत्पट्टे भट्टारक सकलकीर्तिस्तत्पट्टेततो भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति तदुपदेशात्'--(पृ.६०)।

इस स्तम्भ लेख में सिरोंज, चन्देरी और भद्दिलपुर (विदिशा) के भट्टारकीय परवार पट्ट और सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक का उल्लेख है। वे चांदखेड़ी पंचकल्याणक में भट्टारक श्री जगतकीर्ति के आमंत्रण पर साक्षी बने थे।

निष्कर्ष

उक्त मूर्तिलेख एवं स्तम्भ लेख से यह सिद्ध होता है कि पहले भेलसा नामक नगर, जिसे अब विदिशा कहते हैं, ही भद्रपुर (भद्दिलपुर) के नाम से जाना जाता था। यह मलय (मालवा) के मध्य में स्थित है। यहां की उदयगिरी की गुफाएँ और पुरातत्वीय सामग्री से यह स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र रहा है। तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा प्रकाशित **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ म.प्र. दशार्ण-विदर्भ एवं मालव-अवन्ती जनपद** के पृष्ठ ३ पर उदयगिरी की गुफाओं का वर्णन दिया गया है। गुफा नं. १ एवं २० जैन गुफाएं हैं। गुफा नं. २० महत्वपूर्ण है। इसके उत्तरी कमरे में गुप्त संवत १०६ का आठ पंक्तियों का अभिलेख अंकित है। यह मध्य प्रदेश में अब तक उपलब्ध जैन अभिलेखों में सबसे प्राचीन है। इसके अनुसार कुमारगुप्त के शासन काल में शंकर ने भ. पार्श्वनाथ की मूर्ति बनवायी। विदिशा संग्रहालय एवं जैन मंदिरों के मूर्ति लेखों में भद्दिलपुर के और भी उल्लेख मिल सकते हैं।

मलय-भद्रपुर से सम्बन्धित उक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वर्तमान विदिशा (भेलसा) - भद्रपुर ही भ. शीतलनाथ की जन्मभूमि है जहाँ भगवान के चार कल्याणक हुए। गणिनी ज्ञानमती माताजी से सविनय अनुरोध है कि वे अपने विश्वस्त शोधकर्त्ताओं के द्वारा उक्त संदर्भों की पुष्टि कराकर मलय-भद्रपुर (विदिशा) को भ. शीतलनाथ जी की जन्मभूमि के रूप में विकसित करें। असम्बद्ध स्थानों पर जन्मभूमि की स्थापना से वास्तविक तीर्थ उपेक्षित हो जाते हैं, जो सांस्कृतिक विद्रूपता को जन्म देते हैं। तीर्थक्षेत्र कमेटी से भी सहयोग अपेक्षित है। भद्रकाली झारखंड के कोई विश्वसनीय प्रमाण हों तो उनका विवरण भी प्रकाशित होना चाहिये।

- बी-३६९ ओ.पी.एम., अमलाई (जिला-शहडोल) -४८४११७

क्षमावणी पर्व की सार्थकता

- श्रीमती इन्दु कान्त जैन

जब मोह, माया, मान, मत्सर का किया परित्याग है।
तब क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, बैर भी न कर सकें कलुषित हिय।
क्षमावाणी आगम भया तब वैर विभाव मिटावने।
आत्म ज्योति प्रकाश में मिथ्यात्म तिमिर नाशावने।

जैन धर्म ही एकमात्र ऐसा धर्म है जहाँ प्रति वर्ष एक दिन क्षमावणी पर्व का आयोजन किया जाता है। क्षमा व्यक्ति को विनम्र बनाती है। विनम्रता ही आत्म-कल्याण का प्रथम चरण है। दस लक्षण के दस दिन हम अपने अन्दर निहित एक-एक विकार का परित्याग करके अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाने का प्रयत्न करते हैं। इन दस दिनों में हम तप, संयम और त्याग के द्वारा काम, क्रोध, लोभ-मोह, मद, मत्सर आदि विकारों पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। दस दिन तक पूजा-पाठ, व्रतादि करने के पश्चात् यह महापर्व क्षमावणी आता है।

'क्षमा' शब्द सुनने में सरल लगता है परन्तु वास्तव में यह सब व्रतों में सबसे कठिन व्रत है। क्षमावणी वाले दिन हम सवेरे उठकर मन्दिर जाते हैं। भगवान के समक्ष अपने अपराधों की क्षमा-माँगते हैं। अपने परिवार वाले आदि सगे-सम्बन्धियों से भी जाने-अनजाने में गत वर्ष हुई भूलों के लिए क्षमा मांग लेते हैं और समझ लेते हैं कि "क्षमावणी-पर्व" हमने मना लिया।

क्या वास्तव में हम इस दिन के महत्व को समझ सके हैं ?

हम केवल अपने प्रिय व्यक्तियों को ही क्षमा करते हैं या फिर उनसे ही क्षमा माँग लेते हैं। अपने शत्रुओं की तरफ तो हम देखते भी नहीं हैं, बल्कि मुँह घुमाकर खड़े हो जाते हैं। वास्तव में क्षमा तो हमें उन्हें ही करना है या फिर उनसे ही माँगनी है जिन्हें अब तक हम अपने भावों और विचारों से माफ नहीं कर पा रहे हैं।

कई बार व्यक्ति किसी दबाब में आकर मुख से तो क्षमा मांग लेता है, किन्तु ऐसा करते समय वह उस व्यक्ति के प्रति मन में घृणा से और भी ज्यादा भर जाता है। यदि कोई कमजोर व्यक्ति किसी ताकतवर व्यक्ति से क्षमा माँगे तो प्रतिक्रिया उल्टी होती है। वास्तव में क्षमा-भाव का अर्थ है कि हम अपने अन्तःकरण से उस व्यक्ति को माफ कर दें।

दस लक्षण पर्व आत्म-कल्याण का पर्व है। जैन धर्म आत्मा की शुद्धि पर ही बल देता है। इन दस दिनों में हम अपनी आत्मा को विषय-विकारों से पूर्णतया मुक्त कर पाये हैं या नहीं, इसी बात की परीक्षा लेने के लिए क्षमावणी-पर्व मनाया जाता है। दूसरों से क्षमा मांगकर या फिर दूसरों को क्षमा करके हम दूसरों पर नहीं, वरन् अपने आपको उन दुःखों और दर्दों से छुटकारा दिला रहे हैं जिन्हें हम अब तक वर्षा-वर्ष अपने दिल से लगाये रहे और उस पीड़ा के साथ जीते रहे। हम यदि किसी व्यक्ति को अन्तःकरण से क्षमा कर देते हैं, तो हो सकता है कि वह व्यक्ति अपनी कुटिलता न छोड़े किन्तु हम उसी क्षण उन समस्त दुःखों से मुक्त हो जायेंगे और अपना आत्म-कल्याण कर लेंगे। क्षमा-दान सबसे बड़ा दान है, जिसे एक दिन में नहीं अपनाया जा सकता है। निरन्तर ध्यान व अभ्यास के पश्चात् ही आत्मा जिस दिन समस्त विकारों से मुक्त हो अपने शान्त और विशुद्ध रूप को जान लेती है तब प्राणी मात्र के लिए प्रेम का सागर स्वतः ही लहलहाने लगता है। पवित्र प्रेम से भरी आत्मा ही क्षमादान कर सकती है। अतः "क्षमावणी" के महत्व को समझें कि दूसरों का ही नहीं वरन् हमारी अपनी आत्मा का कल्याण भी तभी सम्भव है जब हम दूसरों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष जैसे विचारों से अपने आप को पूर्णतया मुक्त कर लेंगे। अतः क्षमा को जीवन में धारण कर वर्ष में एक बार ही नहीं वरन् हर दिन "क्षमावणी-पर्व" का आनन्द उठायें।

– २१, दुली मोहल्ला, फिरोजाबाद – २८३२०३

गौरव का यदि चाहते, बनना तुम आधार।
क्षमाशील बनकर करो, सबसे सद्व्यवहार।।

❖ ❖ ❖

सत्य समान न धर्म है, झूठ समान न पाप।
सत्य धर्म को धारि, मिटें सकल सन्ताप।।

लखनऊ के जैन साहित्यकार

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'

लखनऊ नगर विभिन्न धर्मावलम्बियों का वास स्थान है। यहां हिन्दु, मुस्लिम, सिख, जैन व इसाई तथा अन्य लोग बहुत ही स्नेह पूर्ण वातावरण में निवास करते हैं। यह नगर अपने भाईचारे व प्रेम व्यवहार के लिये सदैव से दुनिया भर में प्रसिद्ध रहा है। मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि लखनऊ नगर अपने आंचल में अगणित साहित्यकारों का पालन पोषण करता रहा है। यहां जहां सनातनी हिन्दू, मुस्लिम, सिख व इसाई साहित्यकार हैं, वहीं जैन धर्मावलम्बी साहित्यकारों की भी कमी नहीं है। आज हम यहां जैन मतावलम्बी साहित्यकारों पर विहंगम दृष्टिपात करेंगे।

सन् १९१४ ई. में लखनऊ में फूल चन्द जैन, जो आगे चलकर अपने साहित्यिक नाम 'पुष्पेन्दु' के नाम से विख्यात हुये, का जन्म हुआ था। अपने ४९ वर्ष के अल्प जीवन काल में उन्होंने २५० से अधिक कविताओं एवं गीतों का सृजन किया। कविवर पुष्पेन्दु अपने समय के प्रसिद्ध कवियों की श्रेणी में रहे। वह जितनी ही सरस व सशक्त काव्य-सर्जना करते थे उतने ही सरस व सुन्दर ढंग से उसका प्रस्तुतिकरण भी करते थे। वह मंच से काव्य पाठ कर श्रोताओं को घंटों मंत्र-मुग्ध किये रहते थे। सर्वश्री अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा और रूपनारायाण पाण्डेय आदि विद्वान उनके प्रशंसकों में रहे। अमृतलाल नागर को उनकी कविता -

दुख भी मानव की सम्पत्ति है।
तू दुख से क्यों घबराता है।।

बहुत प्रिय थी। वह जब-तब पुष्पेन्दु जी से इसे सुनाने का आग्रह किया करते थे। पुष्पेन्दु जी ने विविध विषयों पर काव्य-सृजन किया। सन १९६२ ई. में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो पुष्पेन्दु जी से रहा न गया और वह कह उठे -

दुनिया ने था सुना एक दिन,
हिन्दी-चीनी भाई-भाई,
आज वही नारा ठुकराते।
'चाऊ' तुम को लाज न आई।।

काल चक्र ने अपनी विषम गति से सन् १९६३ ई. में पुष्पेन्दु जी को हमारे मध्य से सदैव के लिये ओझल कर दिया। **'बसन्त-बहार'** नाम से उनका काव्य संकलन मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन (१९१२-१९८८) प्रसिद्ध इतिहास मर्मज्ञ एवं प्रबुद्ध साहित्यकार थे। **शोधादर्श** चातुर्मासिक के वह आद्य सम्पादक थे। ज्योति प्रसाद जी अंग्रेजी और हिन्दी के कवि तथा लेखक थे। उनके लेख देश व प्रदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। इतिहास और जैन धर्म पर उनकी प्रामाणिक पुस्तकें हैं। सब से बड़ी विशेषता तो यह रही कि वह एक भरे-पूरे साहित्यिक परिवार के जन्मदाता रहे।

श्री ज्ञान चन्द जैन (१९१८-२००६) लखनऊ से प्रकाशित **नवजीवन** दैनिक के सम्पादक रहे। **नवजीवन** को साहित्यिक रूप प्रदान करने में उनकी प्रमुख भूमिका रही। ज्ञान चन्द जैन नागर जी के बालसखाओं में से थे। वह पुराने समय के कथाकार रहे। उनकी कहानियों में मध्य वर्गीय समाज की समस्याओं का सच्चा चित्रण मिलता है।

सन् १९८३ ई. में ८ दिसम्बर को जब अगीत परिषद ने गांधी-भवन में मेरा अभिनन्दन आयोजित किया था तो उस कार्यक्रम समारोह की अध्यक्षता वयोवृद्ध कवि श्री सलेक चन्द जैन जी ने की थी। सलेक चन्द जी अच्छे कवि और वक्ता थे।

श्री अजित प्रसाद जैन (१९१८-२००५) अपने जीवन के अन्तिम समय तक **शोधादर्श** का सम्पादन करते रहे। वह एक अच्छे लेखक और साहित्यकार थे और जैन धर्म से संबंधित एवं अन्य सामाजिक विषयों पर उनके लेख नगर ही नहीं प्रदेश व देश की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे।

श्री रमा कान्त जैन (१९३६-२००९) स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के कनिष्ठ पुत्र थे। रमा कान्त जी कवि, लेखक, समीक्षक व व्यंग्यकार सभी कुछ थे। उनका एक ग्रन्थ गद्य विधा में **'गिलास आधा भरा है'** वर्ष १९९९ ई. में प्रकाशित हुआ था। आप **शोधादर्श** के सम्पादक भी रहे। सड़क दुर्घटनाओं पर उनकी एक कविता दृष्टव्य है-

हादसे यहाँ इतने आम हो गये हैं
बात सुनते उनकी कान जाम हो गये हैं।
पुलिस की मुस्तैदी के क्या कहने
स्याह अखबार के कालम तमाम हो गये हैं।।

श्री कैलाश भूषण जिन्दल (१९१७-२००२) साहित्य सर्जक व साहित्य प्रेमी थे। आप वर्षों लखनऊ जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे।

रेलवे विकास निगम के जनरल मैनेजर के पद पर कार्यरत, डॉ. ज्योति प्रसाद जी के पौत्र श्री राजीव कान्त जैन भी अच्छे कवि हैं। उनकी 'मील का पाषाण' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिये -

हटा, व्यर्थ है
डटा, वह समर्थ है
पथ- निर्माण, प्रदर्शन
जीवन का अर्थ है।

डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' अपनी कविताओं के लिये प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताओं के साथ ही पद्य-बद्ध पत्र भी **शोधादर्श** में प्रकाशित होते रहते हैं। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी इनकी रचनायें पढ़ने को मिलती हैं। उनके 'अनन्त खोज' शीर्षक गीत की कुछ पक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं -

सम्मोहक श्रृंगार जगे हैं,
मदिर दृगों में प्यार जगे हैं,
कलियाँ जागृत लिये उमंगें
जन मन में अभिसार जगे हैं
पर इस जागृति की बेला में
क्यों उदास यह मेरा मन है।

स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के ज्येष्ठ पुत्र एवं स्व. रमा कान्त जैन के अग्रज डॉ. शशि कान्त हिन्दी और अंग्रेजी उभय भाषाओं के उद्भट विद्वान एवं लेखक व सम्पादक हैं। उनके विभिन्न विषयों पर विचारपूर्ण लेख विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। वह Frown / संतर्जन के सम्पादक भी हैं। **शोधादर्श** के मार्गदर्शक हैं।

श्री लूण करण नाहर जैन भी अच्छे कवि हैं। महावीर जयन्ती पर प्रकाशित उनके एक गीत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं -

मन हरषे, मेरा तन सरसे
मेरे मन में खुशी की लहर रे।
यह महावीर जयन्ती आयी।।

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' गंभीर दार्शनिक विषयों के कवि हैं। उन्होंने **समण सुत्तं** का हिन्दी में पद्यानुवाद भी किया है।

कविवर पुष्पेन्दु के भाई श्री कनक रतन जैन भी कवि गोष्ठियों में आया करते थे और कविता पाठ भी करते थे।

सौ. इन्दु कान्त जैन अच्छी कहानी लेखिका हैं। उनकी कहानियों में समाज का सच्चा चित्रण हुआ है। कहानियों का संकलन **'दर्द का रिश्ता'** शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। विवाहोपरान्त यद्यपि वह अपनी ससुराल फिरोजाबाद चली गई किन्तु उनके हृदय में साहित्यक सृजन की क्रिया के बीजारोपण की पृष्ठभूमि लखनऊ ही रही है क्योंकि वह स्व. रमा कान्त जैन की पुत्री हैं।

डॉ. शशि कान्त के पुत्र श्री नलिन कान्त जैन वर्तमान में **शोधादर्श** का सम्पादन कर रहे हैं। आप भी अच्छे लेखक हैं। स्व. रमा कान्त जी के पुत्र श्री अंशु जैन 'अमर' नवोदित साहित्यकार हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त भी अन्य अनेक जैन मतानुयायी साहित्यकार हैं जो साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन कर रहे हैं।

- चन्द्रा-मण्डप, ३७०/२७ हाता नूरबेग,
संगमलाल वीथिका, सआदतगंज, लखनऊ, २२६००३

आभार

डॉ० शशि कान्त जैन व श्रीमती मंजरी जैन के सुपौत्र चि. शिशिर (सुपुत्र श्री शिरीष कान्त व श्रीमती रागिनी जैन) का सौ. खुशबू के साथ मेरठ में १८ नवम्बर, २०११ को शुभ परिणय सम्पन्न हुआ। इस उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु. ५००/- भेंट किये गये।

श्रीमती मंजरी जैन ने अपने पिता श्री रतनचन्द्र जैन की ४३ वीं पुण्य तिथि (२६ अगस्त) और अपनी माता श्रीमती विद्यावती जैन की २१ वीं पुण्य तिथि (७ सितम्बर) पर उनकी पुनीत स्मृति में शोधादर्श को १०१/- भेंट किये।

डॉ. शशि कान्त ने भी अपने पितामह श्री पारसदास जैन की ५५वीं पुण्य तिथि (४ सितम्बर) पर उनकी पुनीत स्मृति में शोधादर्श को रु. ५१/- भेंट किये।

समायोजन और अध्यात्म

- श्री वीरेन्द्र कुमार जैन

मानव को सामाजिक प्राणी होने के नाते कुछ सामाजिक तो कुछ आध्यात्मिक मर्यादाओं में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, परोपकार, विनम्रता एवं सच्चारित्र आदि गुणों के पालन से उसके व्यक्तिगत जीवन का विकास होता है। विकास के मार्ग में सदैव परिस्थितियाँ विषम ही होती हैं, जिनसे हर विकसित हो रहे व्यक्ति को जूझना पड़ता है। सानुकूल परिस्थितियाँ तो ऐतिहासिक महापुरूषों को भी प्राप्त नहीं हुईं जैसे कि राम (चौदह वर्ष का वनवास), भरत चक्रवर्ती (अपने भाई बाहुबलि से हार), सेठ सुदर्शन (शील पर दोषारोपण) और सीता (तीन बार वनवास जाना पड़ा)। इन सबके जीवन में परिस्थितियाँ तो विषम हुईं परन्तु उन परिस्थितियों ने उन्हे विचलित नहीं किया क्योंकि उनके पास आध्यात्मिक संचेतना का जोर था एवं उन्हें प्रत्येक परिस्थिति में समायोजन करना आता था।

हम सभी प्रत्येक दशा में खेद-खिन्नता के साथ परिस्थितियों पर दोषारोपण करते हैं जिससे मानसिक दबाव बनता है जिसे असमायोजन (mal-adjustment) कहते हैं। परन्तु जो समायोजन कर पाता है, वही जीता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार एक व्यक्ति का समायोजन पर्याप्त एवं सम्पूर्ण या स्वस्थ तभी हो सकता है जब वह अपने तथा अपने वातावरण की परिस्थितियों के बीच एक साम्यता की स्थिति बनाये। असमायोजन व्यक्ति और उसके वातावरण के बीच असन्तुलन का बोध कराता है जब कि समायोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्राणी अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के बीच सन्तुलन स्थापित करता है।

जैन दृष्टि में समायोजन

साता और असाता दोनों कर्म और उसके हैं काज।
सुख दुख जन्म विकल्प, कहाँ से रहते ऐसे भवि के पास ।।

- परमार्थ विंशतिका

सुख दुख बैरी बन्धु वर्ग में, काच कनक में समता हो।
वन उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहीं ममता हो।

- अमितगति-आचार्य - भावना बत्तीसी

अरि मित्र महल मसान, कंचन, काच निन्दन शुतिकरन

अर्धावत्सरन असि प्रहारन में, सदा समता धरन।

- दौलतराम जी - छहढाला

होकर सुख में मगन न फूले दुख में कभी न घबराये।
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवी से नहीं भय खावे।।

- जुगलकिशोर मुख्तार - मेरी भावना

उपरोक्त उद्धरणों से फलित होता है कि व्यक्ति अपनी इच्छा व आवश्यकताओं के मार्ग में आने वाली समस्याओं का सामना करता हुआ चलता रहे एवं सभी परिस्थितियों में, चाहे सुखात्मक हों या दुखात्मक, समानता का भाव रखे। साम्य परिणामों से व्यक्ति के व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषताओं का फलागम होता है -

वह अपनी क्षमताओं एवं सीमाओं से परिचित रहता है।

समायोजित व्यक्ति अपने आत्म सम्मान के प्रति जागरूक रहता है और दूसरे का सम्मान करता है।

उसकी आकांक्षा का स्तर परिमित होता है (सबकी वांछा नहीं होती)।

आधारभूत आवश्यकताएँ - शारीरिक, सांवेगिक, सामाजिक - सन्तुलित होती हैं।

समायोजित व्यक्ति का व्यवहार लचीला होता है - रूखा, कड़क या अक्खड़ नहीं होता।

विषम परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य व धैर्य से प्रतिकार करने का बल मिलता है।

सभी लौकिक व पारलौकिक कार्यों में पर्याप्त प्रत्यक्षीकरण होता है। सभी वातावरणों में संतुष्टि, परिस्थितियों के प्रति शिकायत रहित परिणाम।

जीवन के प्रति सन्तुलित दर्शन का होना।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में ये सभी गुण आध्यात्मिकता के जोर से ही आते हैं, क्योंकि समस्त आगत परिस्थितियों को एक दार्शनिक की तरह देखना आसान नहीं है। धीरे-धीरे अभ्यास करने से दैनिक जीवन में दृढ़ता एवं सन्तत्व गुण (Super ego) का विकास होता है जिससे व्यक्ति का सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर ऊँचा उठता जाता है। जिनके जीवन में पर्याप्त प्रत्यक्षीकरण का अभाव होता है वे असमायोजित होते हैं और उनके जीवन में निम्नलिखित कमियां प्रकट होती हैं -

आपस के लोगों से कतराना।

हर समय चिन्ता, छोटे-छोटे प्रसंगों में अपार क्रोध का प्रकट करना।

सभी विषयों को अपने अनुसार चलाने का प्रयत्न करना।
व्यावहारिक निर्णयों को स्वीकारने में अक्षमता।
कम से कम मित्रों, सहयोगियों, वार्तालाप करने वालों का होना।
पारिवारिक बिखराव।
सदैव असफल होने का भय।
अनिश्चित मन, अस्थिर बुद्धि, संवेगात्मक रूप से असन्तुलित, अनिर्दिष्ट उद्देश्य, घृणा-द्वेष एवं बदले की भावना।

असमायोजन तनाव की वह दशा है जो प्राणी को अपनी उत्तेजित दशा का अन्त करने के लिए कोई भी कार्य करने को प्रेरित करती है। यह ऐसी संघर्षात्मक परिस्थिति है जो विरोधी या विपरीत मनोवृत्तियों को उत्पन्न करती है।

असमायोजन की स्थिति में बाह्य परिस्थितियों पर दृष्टि केन्द्रित न कर हमें परिस्थिति का विश्लेषण इस प्रकार करना चाहिये कि यह परिस्थिति क्यों बनी? इसका जिम्मेदार कौन? आखिर दोष किसका है? यदि दोष मेरा है तो व्यर्थ दूसरों पर छींटाकशी क्यों? विषम परिस्थिति में किसी अन्य की गलती का अन्वेषण करने की बजाय हमें समाधान का मार्ग ढूंढ़ना चाहिए ताकि उस स्थिति से उबरा जा सके। शायद ऐसा ही राम, सीता, सुदर्शन सेठ आदि ने किया होगा जिससे वे ऐतिहासिक और महान बन गये।

- व्याख्याता, ज्ञायक संस्कृत टी.टी. कॉलेज, बांसवाड़ा (राज.) ३२७००१

त्याग तरण-तारण सही, भव सागर की नाव।
त्याग बने नही देव पै मनुज लेह यह दाव।।

❖ ❖ ❖

रासती है सीधी राह, रहबर इसका कोई नहीं।
इस राह पर चलकर, आज तक भटका कोई नहीं।।

जैन प्रतीक चिह्न

- श्री ललित कुमार नाहटा

जैन प्रतीक चिन्ह का आजकल जिस अनुपात में प्रयोग हो रहा है वह शास्त्रीय व्याख्या के अनुरूप नहीं है। इसका संभावित व मुख्य कारण है शास्त्रोक्त सही अनुपात से अनभिज्ञता, जो कि जैन तीर्थंकर व केवली भगवंतों की वाणी पर आधारित है। वर्तमान में प्रचलित जैन प्रतीक चिह्न सम्पूर्ण जैन धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की सर्वमान्य मान्यताओं पर आधारित विश्वलोक का आकार है। इसका सही आकार नीचे दिया जा रहा है -

१. आकार की व्याख्या - ऊपर से छोटा, नीचे से क्रमशः फैलता हुआ फिर चौथाई भाग के बाद मध्य तक ऊपरी मध्य में वापस सिकुड़ता हुआ तथा मध्य भाग से निरंतर फैलता हुआ। उदाहरण के लिए नर्तकी अपने कमर पर हाथ रखे पावों को पूरी तरह फैला कर खड़ी हो जैसा। दूसरा उदाहरण त्रिशिराव सम्पुताकार यानि तीन सकोरों (कुल्हड़), से बनी आकृति जिसमें नीचे एक सकोरा उल्टा रखा हो, उस पर दूसरा सकोरा सीधा रख कर उस पर तीसरा सकोरा उल्टा रख दें, ऐसा।

२. माप का अनुपात - इसे दो भागों में बांटते हैं, एक ऊर्ध्व लोकाकाश जो सात रज्जु ऊंचा है व दूसरा अधोलोकाकाश जो भी सात रज्जु ऊंचा है। ऊर्ध्वाकाश ऊपर चौड़ाई में एक रज्जु, निरन्तर बढ़ते हुए मध्य में पांच रज्जु फिर निरन्तर वापस घटते हुए नीचे एक रज्जु हो जाता है। तत्पश्चात अधोआकाश एक रज्जु से निरन्तर बढ़ते हुए नीचे सात रज्जु हो जाता है। ऊर्ध्वाकाश को स्वर्ग व अधोआकाश को नरक की संज्ञा भी दे सकते हैं। इन दोनों की गहराई भी सात रज्जु मानी गई है जिसका घन-फल ३४३ रज्जु भगवान ने बताया है। आयतन ऊर्ध्वलोक का घनफल १४७ व अधोलोक का १९६, कुल ३४३ घन रज्जु। आज की वैज्ञानिक गणना के आधार पर ब्रह्माण्ड के आयतन से जैन प्रतीक, जो लोकाकाश की आकृति का दिग्दर्शक है, का आयतन काफी साम्य रखता है।

३. प्रतीक का विवरण - लोकाकाश के ऊपर जो चन्द्राकार आकृति है वह सिद्ध शिला दर्शाती है, जहाँ मुक्त आत्माओं का वास है। उसके नीचे तीन बिन्दु ज्ञान, दर्शन और चारित्र का निर्देशन करते हैं। स्वस्तिक आत्माओं की निरन्तर प्रगति व शुभत्व का सूचक है।

४. पृथ्वी की स्थिति - हमारी पृथ्वी तिर्यक लोक में स्थित है जो कि पूरे लोकाकाश के मध्य में स्थित है (अर्थात् ऊर्ध्वलोकाकाश के नीचे व अधोलोकाकाश के ऊपर)। इस क्षेत्र को समय क्षेत्र कहा जाता है जिसमें चाँद, सूर्य व सितारों द्वारा समय का निर्धारण होता है।

मेरा आग्रह भरा निवेदन है कि हमारे जैन प्रतीक चिह्न को सही रूप व अनुपात में प्रस्तुत किया जाये और प्रयोग में लाया जाये।

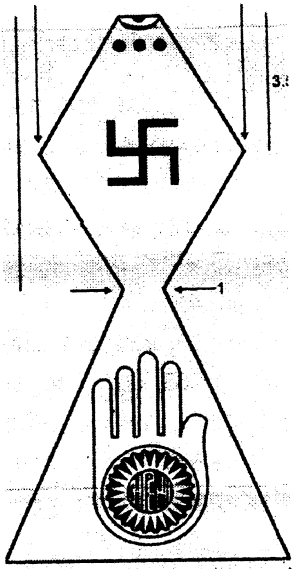

- २१, आन्नद लोक, अगस्त क्रान्ति मार्ग,
नई दिल्ली -११००४९

समण सुत्तं : मूल स्रोत और अनुवाद

– डॉ. शशि कान्त जैन

शोधादर्श 72 (मार्च 2011) में हमने **समण सुत्तं** का परिचय और समीक्षा दी थी तथा उसके मूल स्रोतों के सम्बन्ध में डॉ. सागरमल जैन का **तीर्थंकर वाणी** (फरवरी 2011) में प्रकाशित लेख **Some Reflection on the Samanasuttam** पुनः प्रकाशित किया था एवं डॉ. प्रेम सुमन जैन का लेख "नित्य प्राकृत सामायिक पाठ" भी प्रकाशित किया था जिसमें उन्होंने **समण सुत्तं** से चयनित 42 गाथाओं को जैन के पहचान के रूप में अपनाये जाने का सुझाव दिया है। हमारी यह जिज्ञासा बनी रही कि किन धर्म ग्रन्थों से **समण सुत्तं** की विभिन्न गाथायें संकलित की गई हैं। **तुलसी प्रज्ञा** के अप्रैल–जून 2011 के अंक में डॉ. सागरमल जैन का **Some Reflection on the Samanasuttam** शीर्षक से पुनः एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने प्रत्येक गाथा के मूल स्रोत का निर्देश किया है और **समण सुत्तं** के विभिन्न भाषाओं में किये गये अनुवादों का उल्लेख भी किया है।

डॉ. सागरमल जैन ने यह भी उल्लेख किया है कि विनोबा जी गाथाओं के मूल स्रोतों का उल्लेख करने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु यू.एस.ए. के श्री प्रवीण भाई शाह, मुम्बई की डॉ. गीता मेहता और यू.के. की प्रोफेसर कान्ति मार्गिया के अनुरोध पर, श्री जमनालाल जैन (वाराणसी) के सहयोग से, उन्होंने सभी गाथाओं की पहचान मूल ग्रन्थों में खोजी।

स्रोत ग्रन्थ

उक्त लेख में उपलब्ध कराई गई सूचना के आधार पर **समण सुत्तं** में संकलित गाथाओं के मूल स्रोत का निर्देश नीचे दिया जा रहा है।

चार गाथायें ऐसी हैं जिनका स्रोत उपलब्ध नहीं हो पाया है। ये गाथाएं 121, 446, 468, और 497 हैं।

कुछ गाथाएं दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के धर्म ग्रन्थों से ली गयी प्रतीत होती हैं। ये गाथाएं निम्नवत् हैं –

गाथा सं.	दिगम्बर ग्रन्थ	श्वेताम्बर ग्रन्थ
1	षट्खण्डागम	भगवती सूत्र
2	मूलाचार	आवश्यक निर्युक्ति
3 से 5	थुस्सामि दण्डक	आवश्यक सूत्र
101	गोमट्टसार जीवकाण्ड	पंच संग्रह
391 व 392	प्रवचनसार टीका (जयसेन)	ओघ निर्युक्ति
393	मूलाचार	भगवती आराधना
678	गोमट्टसार जीवकाण्ड	पंच संग्रह

कुछ गाथायें ऐसी भी हैं जो कदाचित् एक ही सम्प्रदाय के दो ग्रन्थों में उपलब्ध हैं (यथा –गाथा सं. 213, 248, 292, 326, 327, 607, 622, 684, 690, 691, 698 और 700)।

डॉ. सागरमल जी द्वारा निर्दिष्ट विवरण के आधार पर विभिन्न स्रोत–ग्रन्थों में उपलब्ध गाथा संख्या की सूचना नीचे दी जा रही है।

क्रम सं.	स्रोत ग्रन्थ	समण सुत्तं की गाथा सं.
1.	अनुयोग द्वार	422
2.	आचारांग (लाडनूं)	90, 142, 152, 166, 257, 258, 499, 500, 575, 616
3.	आतुरप्रत्याख्यान	300, 309, 318, 324, 516, 517, 580, 581,
4.	आराधना सार	486
5.	आवश्यक निर्युक्ति	2, 213, 264, 266, 326, 327, 481, 622, 677, 684, 698, 700
6.	आवश्यक सूत्र	3 से 5
7.	चतुर्विंशतिस्तव	13 से 16
8.	इसिभासियाइं	454, 455, 484
9.	उपदेशमाला (हरिभद्र)	29, 49, 51, 57, 210, 296, 315, 316, 333, 356, 469
10.	उत्तराध्ययन निर्युक्ति	176
11.	उत्तराध्ययन सूत्र	21, 45, 46, 50, 55, 58, 59, 64, 65, 71, 76, 78, 81, 93, 97 से 99, 107 से 110, 114, 118 से 120, 122 से 130, 139, 159, 160, 163, 171 से 173, 175, 205 से 207, 209, 211, 230, 231, 234, 238, 241, 248, 273, 286, 287, 289 से 291, 293, 294, 298, 299, 340, 341, 346 से 350, 354, 355, 357, 359, 364, 380, 384, 386, 397, 399, 410, 412 से 414, 416, 440, 441, 448, 450 से 452, 456, 466, 480, 492, 525 से 528, 534, 535, 567, 568, 572, 588, 589, 591, 595, 609, 610, 621, 624, 628, 629, 636, 657, 658, 661, 675
12.	ओघ निर्युक्ति	40, 292, 391, 392
13.	कार्तिकेय–अणुप्रेक्षा	69, 83, 85, 91, 100, 177, 178, 180, 199, 242, 255, 442, 476, 507, 508 514, 519, 521, 522, 598 से 600, 722 से 725

14.	गुरुवन्दन भाष्य	431
15.	गोम्मटसार कर्मकाण्ड	62
16.	गोम्मटसार जीवकाण्ड	101, 532, 533, 536 से 544, 546 से 548, 550 से 564, 566, 642, 676, 678
17.	चैत्यवन्दन भाष्य	430, 498
18.	जय धवला	153, 154, 605, 608
19.	तिलोयपण्णति	7 से 11, 32, 33, 637 से 639, 643, 644
20.	त्रिलोकसार	615, 651
21.	थुस्सामि दण्डक	3 से 5
22.	दशभक्ति	337
23.	दशवैकालिक	82, 104, 135, 136, 138, 148, 149, 170, 174, 245, 295, 338, 339, 342, 344, 351, 352, 369, 371 से 373, 379, 381 से 383, 395, 398, 400, 401, 403, 404, 407, 408, 445, 607
24.	दशवैकालिक चूलिका	240
25.	दशाश्रुत स्कन्ध	613
26.	दंसण पाहुड	18, 220, 222, 223, 249
27.	द्रव्य संग्रह	263, 501, 594, 646, 650, 674
28.	द्रव्य संग्रह टीका	12
29.	ध्यान शतक	485, 491, 493, 495, 502 से 505, 531, 592
30.	नन्दि सूत्र (स्थविरावली)	30, 31, 755, 756
31.	नय चक्र	34, 35, 275, 280, 284, 590, 606, 635, 669, 685, 690, 691, 697, 714 से 721, 737 से 744
32.	नवतत्त्व प्रकरण	66
33.	नियमसार	20, 182 से 187, 261, 262, 353, 367, 370, 375, 417 से 421, 424 से 427, 432, 433, 436 से 438, 457से 459, 465, 617 से 620, 623, 640, 641, 735
34.	निशीथ भाष्य	44
35.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	22
36.	पंच संग्रह	68, 101, 549, 603, 678, 681, 682
37.	पंचास्तिकाय	52 से 54, 193, 194, 208, 216, 279, 325, 329, 330, 487, 593, 597, 614, 625 से 627, 630 से 634, 645, 647, 649
38.	पंचास्तिकाय सार	270, 271

39.	पंचाशक (हरिभद्र)	423, 439
40.	प्रवचन सार	63, 189, 198, 260, 274, 276 से 278, 282, 283, 376 से 378, 388, 496, 596, 648, 652 से 656, 659, 663 से 666, 696
41.	प्रवचनसार टीका जयसेन	391, 392
42.	प्रवचन सारोद्धार	244
43.	पासणाहचरिउ	488 से 490
44.	पिण्ड निर्युक्ति	70, 285, 292, 409
45.	बारस्स अणुवेक्खा	84, 88, 92, 102, 103, 105, 112, 530
46.	बृहद्कल्प भाष्य	23, 24, 28, 42, 56, 60, 61, 87, 161, 162, 167, 168, 246, 247, 303, 387, 389, 390, 394, 471, 477, 604, 607
47.	भक्त परिज्ञा	47, 48, 95, 140, 145, 150, 151, 158, 248, 366, 513
48.	भगवती आराधना	25, 89, 94, 96, 111, 115 से 117, 143, 144, 146, 155 से 157, 169, 225, 281, 307, 365, 368, 385, 393, 506, 545, 573, 582से 584, 611
49.	भगवती सूत्र	1
50.	भावपाहुड	6, 204, 217, 227, 360 से 363
51.	मरण समाधि	67, 72, 74, 75, 77, 79, 80, 131, 443, 444, 447, 463, 464, 479, 483, 510 से 512, 515, 518, 520, 569 से 571, 574, 577 से 579, 601, 602
52.	महाप्रत्याख्यान	218, 462, 576, 612
53.	मूलाचार (ज्ञानपीठ)	2, 17, 86, 192, 243, 252, 253, 267, 336, 345, 374, 393, 396, 402, 405, 406, 411, 415, 428, 429, 434, 435, 449, 460, 461, 467, 470, 472 से 475, 523, 524, 749, 750
54.	मोक्खपाहुड	179, 181, 203, 224, 226, 268, 269, 288, 453, 494, 587
55.	रयणसार	26, 196, 219, 235, 297, 332, 334, 343, 478
56.	लघु नयचक्र	690 से 692, 699, 701 से 707, 709से 711, 713
57.	लघु श्रुतभक्ति	19
58.	वसुनन्दि श्रावकाचार	302, 304 से 306, 308, 320, 331, 335, 565

59.	विशेषावश्यक भाष्य	132 से 134, 212, 213, 265, 326, 327, 622, 668, 679, 680, 683, 684, 686 से 689, 698, 700, 708, 712, 726, 727, 729 से 733
60.	व्यवहार भाष्य	27
61.	षट्खण्डागम	1
62.	सन्मति तर्क	43, 662, 667, 670 से 672, 693 से 695, 728, 736
63.	सन्मति सूत्र	660
64.	समयसार	36 से 39, 41, 106, 188, 190, 191, 195, 197, 200से 202, 214, 215, 228, 229, 232, 233,236, 237, 250, 251, 254, 256, 259, 272, 358, 585
65.	सावय पण्णति	73, 221, 301, 310 से 314, 317, 319, 321 से 323, 328, 586
66.	सूत्र कृतांग	113, 137, 141, 147, 164, 165, 239, 482, 509, 529, 673, 734, 745 से 748, 751 से 754

अनुवाद

समण सुत्तं में संकलित प्राकृत गाथाओं का संस्कृत में छंदबद्ध अनुवाद पं. बेचरदास जी द्वारा किया गया है। हिन्दी में प्रथम अनुवाद पं. कैलाशचन्द जी द्वारा किया गया। आचार्य विद्यासागर जी ने हिन्दी में छन्दबद्ध अनुवाद किया है। हिन्दी में पद्यानुवाद लखनऊ के श्री प्रकाशचंद जैन 'दास' द्वारा भी किया गया है और ज्योतिर्मुख भाग में संकलित 12 सूत्रों का पद्यानुवाद **शोधादर्श** में ही अंक 16–17, 18, 19, 20, 23, 24, 25, 26 और 27 में प्रकाशित है। मराठी में मुनि विद्यानंद जी द्वारा अनुवाद किया गया है। गुजराती में भी इसका अनुवाद हुआ है। अंग्रेजी में पं. दलसुखभाई मालवणिया के सुझाव पर सर्वप्रथम डॉ. के.के. दीक्षित द्वारा अनुवाद किया गया। उपराष्ट्रपति श्री बी. बी. जत्ती के सुझाव पर न्यायमूर्ति टी.के. टुकोल द्वारा भी अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। अन्ततः चीमनभाई चीकूभाई शाह की अनुशंसा पर अंग्रेजी अनुवाद के दोनों आलेख डॉ. सागरमल जैन को संशोधन–परिमार्जन–सम्पादन के लिए दिये गये, और उन्होंने अंग्रेजी अनुवाद का अंतिम आलेख तैयार किया जो सर्वसेवा संघ वाराणसी से 5 अप्रैल 1993 को प्रकाशित हुआ तथा उसका पुनः प्रकाशन 1999 में भगवान महावीर मेमोरियल समिति नई दिल्ली द्वारा किया गया। उसकी समीक्षा Prabuddha Bharata के फरवरी 2001 के अंक में मेरे द्वारा की गई थी जो **शोधादर्श** 72 में पुनः प्रकाशित है।

मन को किया तितली-तितली

बादल

– बेबी संचिता मित्तल

टपकी कुछ बूंदे, क्या बादल रोए?
कुछ अहसास हुआ मुझे ऐसा,
कि बादल रोए।
बोलती हूं मैं बादल को,
रो न तुम ऐसे।
मांगो जो मांगना है,
पर रो न तुम ऐसे।।
बादल हंसा खिलखिलाकर,
उसको मैं नादान लगी।
फिर उसने मुझसे सुलह करी।।
रोना फिर उसका बंद हुआ,
सूरज का आक्रमण हुआ।
फैली संसार में रोशनी,
सूखा सारा पानी-पानी।
टपकी कुछ बूंदें, क्या बादल रोए?

बारिश

बरसती है बरसती है,
बारिश ऐसे बरसती है।
कड़कती हैं कड़कती हैं,
बिजलियां जैसे कड़कती हैं।।
मन में एक खुशी होती है,
जैसे बारिश बरसती है।
आई है बहार कई दिनों बाद
क्यों न इसको खुलकर जीलें आज।
थी मैं अकेली, थी मैं उदास
तूने यहां आकर, भरा मुझमें उल्लास।
तू मुझे हमेशा ऐसे प्रसन्न करे
जैसे मुझे दुनिया की सारी खुशियां मिले।
ऐसा इसलिए क्योंकि, बरसती है बरसती है।
बारिश ऐसे बरसती है।।

प्यासी धरती

गरजे बादल कड़की बिजली,
तूने मेरे मन को किया तितली-तितली।
तरसती-तरसती आई है धरती,
माँगने तुझसे कुछ।
तुम न इनकार करना उसे,
क्योंकि वह मांगने आई है कुछ।।
कहती है तुमसे,
कुछ बूंदे हमें भी दो।
समेट लूंगी मैं उन्हें;
और कर दूंगी न्यौछावर,
उन मासूम किसानों पर,
जो मांगते हैं मुझसे फसल व जल।।
गरजे बादल कड़की बिजली,
तूने मेरे मन को किया तितली-तितली।

– द्वारा श्रीमती शेफाली मित्तल, पंचकूला

[बाल कवियित्री कक्षा 8 की छात्रा है। उसकी कल्पना, शब्द–चयन और भाव–व्यंजना उसकी अन्तर्निहित काव्य–प्रतिभा को निदर्शित करते हैं।
– सम्पादक]

वीतराग-स्वरूपं

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

न रागं न द्वेषं, न मोहं न क्षोभं।
न कोपं न मानं, न माया न लोभं।।
न योगं न भोगं, न व्याधि न शोकं।
चिदानंदरूपं नमो वीतरागं।।१

न हस्तौ न पादौ, न घ्राणं न जिव्हा।
न चक्षु न कर्ण, न वक्त्रं न निद्रा।।
न स्वामी न भृत्यो, न देवो न मृत्यः।
चिदानंदरूपं नमो वीतरागं।।२

न बंधो न मोक्षो, न नामं न रूपं।
न जन्मं न कर्मं, अलक्ष्यं अनूपं।।
सनातन विशुद्धं, परं ज्योति स्वरूपं।
चिदानंदरूपं नमो वीतरागं।।३

(स्मृतिशेष डाक्टर साहब ने वीतराग स्वरूप को सहज शैली में निरूपित किया है। - सं.)

करुणा का उपदेश

- श्री फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु

जिसने जग के सब जीवों को, निर्भय जीवन का दान दिया।
मिथ्या भ्रम में भटकी जनता को, जिसने अनुपम ज्ञान दिया।।.....१
खुद जिओ, जगत को जीने दो, सुख शांति सुधारस पीने दो।
जिसने जग को यह मंत्र दिया, फिर बंधन मुक्त स्वतंत्र किया।।२.....

उस परम पूज्य परमेश्वर का, सुन लो पावन उपदेश सखे।
हिंसा में धर्म नहीं रहता, है यही सुखद सन्देश सखे।।३.....
जग में हैं जीव समान सभी, दुःख से रहते भयवान सभी।
सब ही को प्यारा है जीवन, इसकी रक्षा के हेतु यतन।।४.....
सब ही करते हैं बेचारे, सब को अपने बच्चे प्यारे।
तुम सब कर करुणा दिखलाओ, तुम विश्व-प्रेम को अपनाओ।।५....

तुमने यह मानव तन पाया, तुमने सुन्दर जीवन पाया।
पर तुम्हे आत्म का ज्ञान नहीं, अपने पर की पहचान नहीं।।६.....
यदि निश्चल होकर संयम से, आतम का ध्यान लगाओगे।
तो निश्चय ही धीरे-धीरे, भगवान स्वयं बन जाओगे।।७.....
करूणामय का उपदेश यही, है महावीर सन्देश यही।

[लखनऊ के स्व. पुष्पेन्दु जी की यह स्फुट भावपूर्ण रचना भगवान महावीर के करुणा के उपदेश को स्पष्ट करती है - सं.]

सामयिक परिदृश्य

- डॉ. परमानन्द जड़िया

देखिये! संसार कितना स्वारथी।
हैं उपेक्षित आज जो परमारथी।।
चापलूसी में लगे आचार्य सब
कर रहे खुलकर नकल विद्यारथी।।१।।

राज-महलों में तपस्वी रह रहे।
सैकड़ों घर बाढ़-जल में हैं बहे।।
हो जहां धृतराष्ट्र बैठे मंच पर,
कौन अपनी आपदा रो कर कहे।।२।।

सत्य चित आनन्दमय संसार है।
हो रहा चहुंओर जय जय कार है।।
किन्तु 'परमानन्द' हम किससे कहें,
बढ़ रहा इस देश में व्यभिचार है।।३।।

धर्म की अवधारणा धूमिल हुई?
सत्य-व्रत की राह क्यों पंकिल हुई?
कोई तो बतलायें 'परमानन्द क्यों'
सभ्यता इस देश की बोझिल हुई।।४।।

-जड़िया निवास, १८६/५१, खत्री टोला
मशक गंज, लखनऊ- १८

विविध-विविधा

- श्री अंशु जैन 'अमर'

१. 'सागर' खुद गोते लगा रहे, गहरे 'बोली' पैठ।
ए.सी. की क्या बात है, करते मोबाईल पर चैट।।

२. हम अखाड़े के पहलवान, मुझे न पूजे कोय।
बिम्ब म्हारो देखिए, ते जिन-बिम्ब माने हर कोय।।

३. तन तो एक हैण्ड सेट है, आत्मा उसकी सिम।
टच स्क्रीन भी बेकार है, बिना लगे कोई सिम।।

४. गृह-त्यागी हैं, फिर भी 'धाम' चाहिए।
'काम' नहीं हैं उनको, फिर भी नाम चाहिए।।

५. त्यागी हैं भगवान भरोसे, निलय शिव विशाल।
पार्श्व किनारे हो गये, अब कौन रखे ख्याल।।

६. पुष्प के पुष्प, सौरभ की सौरभ से सुवासित।
'कुन्द कुन्द' हो गये 'पुष्पदन्त' प्रतिस्थापित।।

७. अन्न ना ग्रहण करने वाले को 'अन्ना' कहते हैं।
दूसरों की जान सांसत में डालने वाले को 'सांसद' कहते हैं।।

८. हजारे तिहाड़ क्या गये, करोड़ों हजारे हो गये।
सिब्बल-चिदम्बरम भी, विलास के आगे जीरो हो गये।।

९. मंदिर ये बनाते नहीं, इनको क्यों दें वोट?
झूठे व मक्कार हैं, संसद में लहराते हैं नोट।।

लड़ता कब तक

- श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'

अपने बिगड़े हुए हालात से लड़ता कब तक?
और टूटे हुए दिन-रात से लड़ता कब तक?
खेल में जीत कभी हार भी हो जाती है,
भाग्य में सिर्फ लिखी मात से लड़ता कब तक?
कौन अपना है, ग़ैर कौन, समझना मुश्किल,
अपनों के ही मिले आघात से लड़ता कब तक?
दुश्मनों ने जो किये वार, सह लिये उसने,
दोस्तों के किये जुल्मात से लड़ता कब तक?
उसने सच्चाई बताने की बहुत कोशिश की,
झूठ-दर-झूठ की बरसात से लड़ता कब तक?
कौन किस मोड़ पर दे जाए दग़ा कब किसको,
बढ़ती हर सिम्त खुराफात से लड़ता कब तक?
कौन सुनता है जिसे अपनी सुनाते 'राजेश'
दिल में उठते हुए जज़्बात से लड़ता कब तक?

- पद्माकुटी, सी-२६, अलीगंज स्कीम, लखनऊ-२४

शीत काल

- श्री अजित कुमार वर्मा

शीत लहर के कोप का, ऐसा हुआ प्रभाव।
फुटपाथों पर जिन्दगी, मरती है बेभाव।।
शीतकाल में जोर से ठंडी रही दहाड़।
दिन तो राई-सा लगे, रातें लगे पहाड़।।
जाड़े में दिननाथ को, लगी ठंड है खूब।
उगे देर से इसलिये, जल्दी जाता डूब।।
दिन तो होता उड़न छू, ज्यों पलभर की बात।
कठिन बड़ी है काटना, शीत काल की रात।।

दिन नाथ दिखलाओ, निर्मल रूप अनूप।
मिले निजात शीत से, हो खिलखिलाती धूप।।
बच्चों से बोले नहीं, करे युवक को माफ।
बूढ़ो को छोड़े नहीं, ढूँढें फिरे लिहाफ।।
पास धनाढ्य वर्ग के, जाड़े का क्या काम।
खाते पिस्ता व काजू, चिलगोजा, बादाम।।
गले पड़ा लखनऊ के, शीतलहर का फंद।
घर बैठे अब लीजिये, शिमला का आनंद।।

- २४६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

दीप धरें

- श्री अमरनाथ

आओ! हम दो दीप धरें।
एक, दीप सुधि के सिरहाने
दूजा, विस्मृति के पैताने
आओ! हम दो दीप धरें।
आओ! हम दो दीप धरें।।
इक, अतीत को रौशन कर दे
दूजा, भविष्य जगमग कर दे
रखें एक, चौराहों पर हम
दूजा, खोई राहों पर हम
एक करे मन को रौशन जब
ऊर्जा भर दे, दूजा तन तब
जूझे पहला, अंधकार से
दूजा, अशिक्षा की कार से
निर्धनता की मार खत्म हो
हिंसा, अत्याचार खत्म हो
घर-घर में, दो दीप धरें
आओ! हम दो दीप धरें।।
एक दीप, घर के अंगयाने
दूजा, द्वार तने शमियाने
एक जलाएँ, हम तहखाने
दूजा, गगन शीश हो ताने
एक, नदी को अर्पण कर दें
दूसरा, मरू समर्पण कर दें
एक, हिमालय की चोटी पर
दूजा, तिमिराच्छित घाटी पर
जगमग, हम सारा भुवन करें
जगमग, जल, धरती गगन करें
पग-पग पर हम दीप धरें
पथ-पथ पर हम दीप धरें।
आओ! हम दो दीप धरें।।
पहला, तन को ज्योतित कर दे
दूजा, मन आलोकित कर दे
एक, ज्ञान की किरण जगाए
दूजा, उसका रूप दिखाए
एक, हृदय प्रकाशित कर दे
दूजा, अज्ञान तिरोहित कर दे
कर दे आत्मा को ज्योतिर्मय
दिखला उसका रूप दीप्तिमय
करे मिलन, परमात्म-आत्म का
करे संविलन फिर दोनों का
गुरु-पग-रज हम शीश धरें।
उन चरणों, दो दीप धरें।
आओ! हम दो दीप धरें।।

-४०१ ए, उदयन-१,
बंगला बाजार, लखनऊ- २

साहित्य सत्कार

Jaina Archaeology Outside India : by Dr. Jineshwar Das Jain; pub. Shri Bharatvarshiya Digambar Jain (Tirtha Sanrakshini) Mahasabha, Aishbagh, Lucknow-226004; July 2011; pages 98, 56 illustrations; *price Rs. 150/-*

The author Dr. J.D. Jain travelled to more than 33 countries in the world to explore the existence of Jaina archaeology outside India and this book is an outcome of that effort.

The remains in Indoneshia are generally described as Buddhist. Similar is the case with the remains in Cambodia and Thailand, as also in Vietnam and Myanmar (Burma). The author has very dexterously tried to identify most of the remains as influenced by the Jain traditional lore. The mysterious temples and pyramids of Maya civilization in Mexico and Gautemala also seem to have been influenced by Jainism. The Jain influence has also been traced in Greek culture and civilization, in Sumer and Babylonian civilization, and in Persia, Tibet, Pakistan and China.

The book is profusely illustrated. It makes interesting reading although it may not be possible to agree with all the findings. The author and publisher deserve compliments.

श्री रांदेररोड श्वे. मू. पू. जैन संघ, सूरत, के प्रकाशन :

श्री पी.एम.शाह, बापा सीताराम चौक, स्टेशन रोड, तलाजा–634140, जिला भावनगर की ओर से श्री नितेश संघवी द्वारा प्राकृत भाषा के प्रशिक्षण एवं प्रसार के सम्बन्ध में **प्राकृत विज्ञान बालपोथी भाग 2, 3 व 4** तथा **पाइअविन्नाणकहा (प्राकृत विज्ञान कहा) भाग 1 व 2** उपलब्ध कराये गये हैं। ये सभी पुस्तकें सचित्र हैं। प्राकृत भाषा की ये पुस्तकें गुजराती भाषा में अनुवाद के साथ हैं। गुजराती भाषा में प्राकृत भाषा को समझने के लिए ये पुस्तकें उपयोगी हैं। इन सभी पुस्तकों का प्रणयन पूज्य आचार्य श्री विजयकस्तूरसूरीश्वर जी द्वारा किया गया है और सम्पादन आचार्य श्री विजय सोमचन्द्र सूरि द्वारा किया गया है।

उपरोक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित पुस्तकें भी वहीं से प्रकाशित हैं :

1. **बोधप्रदीप पञ्चाशिका** – यह अज्ञात कवि प्रणीत प्राकृत में रचना है जो गुजराती और हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित है।

2. **प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतककाव्यम्** – यह आचार्य श्री जिनवल्लभ सूरि जी की संस्कृत में रचना है और इस पर श्री पुण्य सागर गणि की कल्पलतिका टीका हिन्दी में है।

3. **पुण्यचरितमहाकाव्यम** – 100 वर्ष पहले हुई साध्वी श्री पुण्यश्रीजी के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में आशुकवि पं. नित्यानन्द शास्त्री जी की संस्कृत में रचना है। परिशिष्ट 2 में शब्दकोष दिया गया है और परिशिष्ट 6 में कठिन काव्यों का भावानुवाद भी दिया गया है।

इन तीनों पुस्तकों के सम्पादक आचार्य श्री विजयसोमचन्द्र सूरि जी और महोपाध्याय विनयसागर जी हैं।

श्री भूरचन्द जैन की कृतियां :

1. **सर्वोदय से सूर्योदय** – गुजरात प्रदेश के कच्छ क्षेत्र में मेराउ नामक गांव श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अचलगच्छ का केन्द्र रहा है। इस गांव में जन्मे मुनि श्री सर्वोदयसागर जी तथा उनके गुरु एवं साथी मुनिराजों का जीवन–परिचय इस 64 पृष्ठीय पुस्तिका में दिया गया है।

2. **जैन तीर्थंकर निर्वाण तीर्थ** – इस 48 पृष्ठीय पुस्तिका में श्वेताम्बर आम्नाय में प्रतिष्ठित पांच जैन तीर्थ स्थानों (सम्मेतशिखर, चम्पापुरी, गिरनार, पावापुरी जलमंदिर और शत्रुंजय) का परिचय दिया गया है।

दोनों ही पुस्तिकाएं अरिहंत प्रकाशन, अरिहंत भवन, सदर बाजार, बाढ़मेर (राज.) से प्रकाशित हैं।

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ हरिद्वार के प्रकाशन :

1. **मिले मन भीतर भगवान** – आचार्यदेव श्री विजय कलापूर्ण सूरिजी महाराज द्वारा भक्ति तत्व की विवेचना की गई है। जिन भक्ति क्या है और उसका अभ्यास किस प्रकार किया जाये, इसे शास्त्रोक्त विवेचन के साथ स्वानुभव के आधार पर बतलाया गया है। मूल रचना गुजराती भाषा में है और उसका हिन्दी अनुवाद श्री विनयसागर तथा श्री

नैनमल विनयचन्द सुराणा द्वारा किया गया है, जो प्रस्तुत पुस्तक के रूप में प्रकाशित है।

2. **अध्यात्मवाणी** – इसमें शांतिसौरभ जैन मासिक के अध्यात्म वाणी विभाग में आचार्यदेव श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वर जी के 14 विषयों पर प्रकाशित लेखों का संग्रह है। सम्पादन मुनि श्री मुक्तिचन्द्र विजयजी और मुनिचन्द्र विजयजी द्वारा इस आशय से किया गया है कि यह पुस्तक अन्तर्मुखी बनने के लिए इच्छुक जिज्ञासुओं का पथ प्रदर्शन करेगी।

3. महामंत्र की अनुप्रेक्षा – श्री नमस्कार महामंत्र के स्वरूप, महत्व और आराधना के सम्बन्ध में पूज्य पं. श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर द्वारा विवेचना की गई है। इसका हिन्दी में अनुवाद श्री सोहनलाल पाटनी ने प्रस्तुत किया है। श्री विजय कलापूर्ण सूरीश्वर जी महाराज द्वारा प्रास्ताविक लेख में प्रस्तुत विषय की विवेचना करते हुये यह मंगल कामना की गयी है कि इस अनुप्रेक्षा के माध्यम से सभी तत्व जिज्ञासुओं में नवकार महामंत्र के प्रति श्रद्धा का भाव बढ़े, और उसकी साधना में स्थिरता एवं प्रगति प्राप्त कर सभी आत्म–गुण–संचय के अधिकारी होवें।

उपरोक्त तीनों पुस्तकें मोतीलाल बनारसीदास, 41 यू.ए. बंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली– 110007, के माध्यम से प्रकाशित है।

साहित्य भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया की कृतियां :

1. **रुक्मिणी हरण (खण्ड–काव्य)** – श्रीमद्भागवत् कथा के एक प्रसंग को लेकर इस खण्ड काव्य की रचना की गयी है। प्रसंग इतना है कि रुक्मिणी का भाई रुक्मी उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह शिशुपाल से करना चाहता था। रुक्मिणी की माता को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने सुदेव नाम के ब्राह्मण द्वारा रुक्मिणी का पत्र द्वारिकापुरी के नायक श्री कृष्ण के पास भिजवाया और पत्र पाकर श्री कृष्ण ने अकेले ही रथ पर जाकर रुक्मिणी का हरण किया तथा विरोध करने वाले योद्धाओं को परास्त किया। द्वारिका में आकर रुक्मिणी के साथ कृष्ण जी का विवाह विधिवत् सम्पन्न हुआ।

2. बालक ध्रुव – यह खण्ड काव्य भी श्रीमदभागवत् के कथानक पर आधारित है। महाराज उत्तानपाद की दो रानियों के बीच सौतिया डाह

और उसके परिणाम स्वरूप बड़ी रानी सुनीति के पुत्र ध्रुव के साथ छोटी रानी सुरुचि का दुर्व्यवहार इस कथानक का आधार है। देवर्षि नारद के माध्यम से बालक ध्रुव को प्रभु की अनुकम्पा की प्राप्ति का चित्रण जड़िया जी की स्वयं की उद्‌भावना है, यह उन्होंने अपने आमुख में इंगित किया है।

श्रीमद्‌भागवत् के कथानकों के तथा अन्य पौराणिक आख्यानों के आधार से डॉ. जड़िया जी ने 21 रचनायें सम्प्रति की हैं। उनकी भक्ति–भावना इनमें मुखरित है। मधूलिका प्रकाशन, 189/51 खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–18 से उनकी रचनायें प्रकाशित हैं।

भजन–मणिमाला : संकलन श्री लूणकरण नाहर जैन; प्र. लूणकरण कमलादेवी नाहर चेरिटेबुल ट्रस्ट, नाहर निकेतन, 514, राजेन्द्र नगर, लखनऊ – 226004; चतुर्थ संस्करण, जुलाई 2011

भजनों के माध्यम से समाज में भगवान के प्रति भक्ति की भावना जाग्रत करने के उद्‌देश्य से प्रस्तुत संकलन में 148 रचनाओं का संग्रह है। इसमें अधिकांश रचनाएं 1958 से 2010 के बीच की गई श्री नाहर जी की स्वयं की है।

हीरक माला : रचयिता श्री हीरालाल जैन दिवाकर, दिवाकर प्रकाशन, पूर्व सुभाष टॉकीज, जबलपुर – 482002

श्री हीरालाल जैन द्वारा संस्कृत में रचे गये 40 श्लोकों के संग्रह के अतिरिक्त जैन धर्म का तात्विक विवेचन सम्बन्धी लघु निबन्ध भी इसमें सम्मिलित है।

आपका आरोग्य आपके पास : ले. डॉ. चंचलमल चोरडिया, प्र. कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

इस 48 पृष्ठीय पुस्तिका में डॉ. चोरडिया ने स्वास्थ्य सम्बन्धी विज्ञान के विविध पहलुओं की चर्चा की है, और स्वास्थ्य मंत्रालय के कार्यक्रमों की समीक्षा की है। जन सामान्य में चिकित्सा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सम्यक् जानकारी के प्रसारण के लिए यह पुस्तिका उपयोगी है।

लड़कियां दस्तक देती हैं : ले. डॉ. किशोरी लाल व्यास 'नीलकंठ', एफ–1, रत्ना रेजीडेंसी, माहेश्वरी नगर, हब्शीगुडा, हैदराबाद–500007

भूमिका में डॉ. व्यास ने लड़कियों से उठने का आवाहन किया है। प्रस्तुत 57 कविताएं लगभग 20 वर्षों के अन्तराल में लिखी गई हैं और इन कविताओं में लड़कियों के प्रति कवि की गहन सहानुभूति व्यक्त हुई है। नारी मुक्ति आन्दोलन का इन कविताओं में उन्मुक्त सन्देश है। लड़कियों को प्रताड़ित करने वाली विभिन्न स्थितियों का सहज और वास्तविक चित्रण अधिकांश कविताओं में किया गया है। यह काव्य संग्रह बच्चियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। कवि का उद्घोष है :

राहों के प्रभंजन
तुम्हें क्या रोकेंगे
नदियां और समुद्र
तुम्हें क्या टोंकेगे
न हार, न पलायन
सतत् आगे बढो
मेरी बच्चियों
नया युग तुम्हें बुलाता है।

जैन सम्वाद – श्री अखिल बंसल द्वारा सम्पादित अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ का यह मुख पत्र है। उसका यह प्रथम अंक अक्टूबर 2011 में प्रकाशित हुआ है। इसका लोकार्पण लखनऊ में 15 अक्टूबर को किया गया। इसमें श्री अखिल बंसल द्वारा जैन पत्र सम्पादक संघ के 2 अक्टूर 2006 को गठन से अब तक की गयी कार्यवाहियों का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। जैन पत्रकारिता के विभिन्न पक्षों पर श्री गुलाब कोठारी, डॉ. चीरंजी लाल बगड़ा, श्री नीरज जैन, पं. रतनचन्द्र भारिल्ल, श्री कपूरचन्द पाटनी, डॉ. शशि कान्त जैन, श्री सुरेश सरल, श्री रमेश कासलीवाल और श्री हुकमचंद जैन 'मेघ' के विचार दिये गये हैं। पत्र सम्पादक संघ का विधान भी दिया गया है। प्रकाशन अ. भा. जैन पत्र सम्पादक संघ 129, जादोन नगर–बी, दुर्गापुरा, जयपुर–302 018 से हुआ है।

– डॉ. शशि कान्त जैन

समाचार विविधा

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

दिनांक ४ जून से ८ जून २०११ तक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, करौदी, वाराणसी में आई.एस.जे.एस. तथा पार्श्वनाथ विद्यापीठ के संयुक्त तत्वावधान में जैन धर्म के विविध विषयों पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। दिनांक ६ जून को **सल्लेखना विषय पर** एक **संगोष्ठी** आयोजित की गई। प्रो. सुदर्शन लाल जैन ने 'सल्लेखना आत्महत्या नहीं है' विषय पर विचार अभिव्यक्त किए। उन्होंने बतलाया कि आत्महत्या में व्यक्ति अपना विवेक खो देता है और अपने प्राणों की आहुति रेल की पटरी के नीचे लेटकर, जहर खाकर, आग लगाकर आदि विभिन्न साधनों के द्वारा कर देता है; जो न तो न्यायसंगत है और न ही धर्म के अनुकूल। परन्तु जैन सल्लेखना में ऐसा कुछ भी नहीं होता है अपितु विवेक पूर्वक वीतराग भाव से मृत्यु का स्वागत किया जाता है। जैन परम अहिंसक है और दूसरे के हिंसा करने की अपेक्षा आत्महिंसा को सबसे निकृष्ट बात मानते हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा ग्रहण की गयी सल्लेखना मृत्यु महोत्सव है, पण्डित मरण है। आत्महत्या या इच्छामृत्यु नहीं। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए अमेरिका से पधारे प्रो. पारसमल अग्रवाल ने सल्लेखना की बारीकियों को स्पष्ट करते हुए 'जैनों की सल्लेखना आत्महत्या है या इच्छामृत्यु है' इसका सिरे से खण्डन किया।

डॉ० विमल चन्द्र जैन, सेवानिवृत्त प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय बारा, राजस्थान, ने **"जैन भूगोल : एक नवीन अवधारणा"** विषय पर १५ सितम्बर को व्याख्यान प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने बतलाया कि जैन भूगोल प्रकृति के साथ सकारात्मक सम्बन्ध बनाने का पक्षधर है। मनुष्य की मनोवृत्तियों को ध्यान में रखकर भौगोलिक वातावरण को कैसे सुरक्षित रखा जा सकता है और उसे कैसे जीवनोपयोगी बनाया जा सकता है, इस सन्दर्भ में जैन धर्म दर्शन के सिद्धान्तों की उपयोगिता को रूपायित किया। व्याख्यान के पूर्व विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सुदर्शन लाल जैन ने जैन भूगोल की रूपरेखा पर जैनागमों के आलोक में प्रकाश डाला। अध्यक्षता सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० आर०एस० यादव, भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने की। संचालन डॉ० अशोक कुमार सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, पार्श्वनाथ विद्यापीठ ने किया।

२० सितम्बर को जैन विश्वभारती लाडनूँ से पधारी विदुषी समणी शारदाप्रज्ञा जी का **भगवान महावीर का वर्तमान के समाज को अवदान** विषय पर व्याख्यान हुआ। उन्होंने बताया कि महावीर का धर्म व्यक्तिनिष्ठ है। व्यक्ति के कल्याण से ही मानव कल्याण सम्भव है। महावीर ने भाग्यवाद को पुरुषार्थवाद में बदल दिया। काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के धर्म विज्ञान संकाय के प्रमुख प्रो० डॉ० आर० सी० पण्डा ने अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि धर्मविज्ञान संकाय के पूर्व प्रमुख प्रो० कृष्णकान्त शर्मा थे। संस्थान के निदेशक (शोध) प्रो० सुदर्शन लाल जैन ने विषय पर प्रकाश डाला। संचालन विद्यापीठ के शोध अध्येता डॉ० नवीन कुमार श्रीवास्तव ने किया।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी, जबलपुर

यह संगोष्ठी ४ से ६ अक्टूबर, २०११ तक डॉ. अशोक कुमार जैन (वाराणसी), डॉ. कमलेश जैन (वाराणसी) तथा डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) के संयोजन में सम्पन्न हुई। स्थानीय संयोजक पं. खेमचन्द्र जैन थे। ४ अक्टूबर को प्रथम सत्र की अध्यक्षता डॉ. रमेश चन्द्र जैन (बिजनौर) ने की तथा डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' (बरहानपुर) ने 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक की प्रयोजनीयता' पर शोध आलेख का वाचन किया।

डॉ. शीतल चन्द्र जैन (जयपुर) की अध्यक्षता में द्वितीय सत्र डॉ. अशोक कुमार जैन के मंगलाचरण तथा डॉ. कपूरचंद जैन (खतौली) के संचालन में प्रारंभ हुआ। इसमें ५ शोध पत्र प्रस्तुत किये गये। तृतीय सत्र की अध्यक्षता डॉ. धर्मचंद जैन (जोधपुर) ने की। संचालन डॉ. कमलेश जैन (जयपुर) ने किया। इस सत्र में भी ५ आलेखों को प्रस्तुत किया गया।

दिनांक ५ अक्टूबर को चतुर्थ सत्र श्री रतन लाल बैनाड़ा (आगरा) की अध्यक्षता में और डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' (बरहानपुर) के संयोजन में हुआ।

पंचम सत्र की अध्यक्षता पं. अभयकुमार जैन (बीना) ने की। संचालन डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन (गाजियाबाद) ने किया। इसमें ५ आलेखों का वाचन किया गया।

छठवें सत्र की अध्यक्षता प्रो. श्रीयांश कुमार सिंघई (जयपुर) ने की। संचालन डॉ. ऋषभ कुमार जैन फौजदार (वैशाली) ने किया। इस सत्र में ११ आलेखों का वाचन किया गया।

सप्तम सत्र की अध्यक्षता डॉ. श्रेयांस कुमार जैन (बड़ौत) ने की। संचालन पं. अरुण जैन (ब्यावर) तथा मंगलाचरण डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन (सनावद) ने किया। इस सत्र में दो आलेखों का वाचन किया गया।

इस सत्र में स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन (लखनऊ) द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक-**जैनिज्म, दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन** के हिन्दी अनुवाद **जैन धर्म-प्राचीनतम जीवित धर्म** (हिन्दी अनुवादक पं. पुलक गोयल) का तथा डॉ. सुरेन्द्र कुमार भारती द्वारा संपादित **सुधा-आशीर्वचन** का विमोचन श्री ज्ञानेन्द्र जी गदिया, डॉ. श्रेयांस जैन बड़ौत, डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरननगर व डॉ. अशोक जैन वाराणसी आदि ने किया। पं. अरुण जैन ब्यावर ने आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का एवं आचार्य श्री ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र का परिचय दिया तथा इस केन्द्र द्वारा अब तक दिये गये पुरस्कारों की जानकारी दी। इस वर्ष यह पुरस्कार पं. रतन लाल जैन बैनाड़ा आगरा को श्री राजेन्द्र नाथूलाल जैन मेमोरियल ट्रस्ट, सूरत की ओर से श्री ज्ञानेन्द्र गदिया द्वारा प्रदान किया गया। गदिया परिवार द्वारा मुनिपुंगव श्री सुधासागर श्रमण संस्कृति सेवा एवं तीर्थ संरक्षण पुरस्कार अनेकांत मनीषी डॉ. रमेशचन्द जैन बिजनौर को प्रदान किया गया।

अष्टम सत्र की अध्यक्षता प्रो. भागचन्द जैन 'भास्कर' (जयपुर) ने की। संचालन डॉ. अशोक कुमार जैन (वाराणसी) ने किया। इस सत्र में सात विद्वानों ने आलेख पाठ किया। विशिष्ट अतिथि प्रो. जे.एम.केलर (कुलपति-रानी दुर्गावती वि.वि., जबलपुर) थे। संगोष्ठी आख्या-डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) ने प्रस्तुत की तथा संगोष्ठी अनुभव पं. पुलक गोयल (सांगानेर) एवं श्रीमती नीलू जैन (जबलपुर) ने सुनाये। अध्यक्षता श्री सतेन्द्र जैन जुग्गू ने की।

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का अधिवेशन दिनांक ०७ अक्टूबर को श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, लार्डगंज के समीपस्थ लाखा भवन जबलपुर के सुसज्जित विशाल सभा भवन में मुनिपुगंव श्री सुधासागर जी महाराज एवं अन्य सन्तों की उपस्थिति में डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर की अध्यक्षता एवं महामंत्री कर्मयोगी डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन बुरहानपुर के संयोजकत्व तथा श्री राजेन्द्र नाथूलाल जैन मेमोरियल चेरिटेबल ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्र गदिया के मुख्यातिथ्य में वयोवृद्ध पंडित बाबूलाल जैन 'फणीस' (ऊन) के मंगलाचरण पूर्वक प्रारंभ हुआ।

विद्वानों को पाँच पुरस्कार प्रदान किये गये। क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति विद्वत्परिषद पुरस्कार पंडित महेन्द्रकुमार जैन, प्राचार्य श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त संस्कृत महाविद्यालय, मोरेना एवं युवा पं. शैलेश शास्त्री (मदनगंज किशनगढ़) को, पं. गोपालदास बरैया स्मृति विद्वत्परिषद पुरस्कार श्री पं. ज्ञानचन्द जैन पिड़रुआ, सागर, एवं डॉ. संतोषकुमार जैन, सीकर, को और डॉ. पंडित पन्नालाल जैन साहित्याचार्य स्मृति पुरस्कार डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन गाजियाबाद को प्रदान किये गये। अध्यक्षीय व्याख्यान में डॉ. जय कुमार जैन ने कहा कि विद्वत्परिषद् अपनी ६७ वर्ष की सुदीर्घ परम्परा के साथ निरन्तर आगे बढ़ रही है। हम आर्ष संस्कृति के संरक्षण की दिशा में कार्य करते हैं और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति पूज्यता का भाव रखते हैं। उन्होंने बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्पराओं पर विस्तृत प्रकाश डाला। अधिवेशन संचालन करते हुए महामंत्री डॉ. सुरेन्द्र जैन भारती ने कहा कि विद्वत्परिषद् के विद्वान अपनी विद्वत्ता के साथ परम पूज्य आचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हुए जिनवाणी की आराधना एवं प्रचार प्रसार के लिए सदैव अग्रणी बने रहेंगे तथा समाज से भी अपेक्षा है कि वह उनका मान बनाये रखे।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय (मंगल टीका) अनुशीलन

घंसौर जिला सिवनी म.प्र. में दिनांक ८ एवं ९ अक्टूबर, को डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन (बरहानपुर) के संयोजकत्व में **पुरुषार्थसिद्धयुपाय (मंगलटीका) अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी** सम्पन्न हुई। संगोष्ठी में श्री मूलचन्द जी लुहाड़िया, किशनगढ़, श्री रतनलाल बैनाड़ा, आगरा, डॉ. रमेशचन्द्र, बिजनौर, डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी', वाराणसी, डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, सनावद, डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन, बरहानपुर, डॉ. वीरेन्द्र निर्झर, बुरहानपुर, और डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन, वाराणसी, ने महत्वपूर्ण शोधालेखों का वाचन किया। मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज ने अपने आशीर्वचन में कहा कि मैने पूर्वाचार्यों के आलोक में **पुरुषार्थसिद्धयुपाय** पर संस्कृत भाषा में **मंगल टीका** का प्रणयन किया है। यह टीका जिस तरह मेरे शुभोपयोग में मंगलसिद्ध हुई उसी तरह यह स्वाध्यायियों के लिए भी मंगल सिद्ध हो, इस भावना से इसका नाम **मंगल टीका** रखा है।

लखनऊ में राष्ट्रीय विद्वत् महा सम्मेलन

दिनांक १५-१६ अक्टूबर को लखनऊ में पूज्य मुनि श्री सौरभ सागर जी की प्रेरणा एवं सान्निध्य तथा श्री भा. दिग. जैन महासभा एवं श्री पुष्प वर्षायोग समिति

डालीगंज लखनऊ के सौजन्य से द्विदिवसीय विद्वत् महा सम्मेलन आयोजित किया गया। दिग. जैन समाज की तीनों प्रमुख विद्वत् इकाईयों - शास्त्री परिषद्, विद्वत् परिषद एवं तीर्थंकर ऋषभ देव विद्वत् महासंघ के पदाधिकारियों एवं अन्य विद्वानों ने सहभागिता की। चर्चा का विषय था कि सामाजिक एकता में विद्वानों का क्या कर्तव्य और योगदान हो । ३० विद्वानों ने अपने विचार रखे। प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन द्वारा प्रस्तुत आठ प्रस्तावों पर सामान्य चर्चा के बाद सर्वानुमति हो गयी।

डॉ. चीरंजी लाल बगड़ा ने जैन पत्रकारिता दशा और दिशा पर अपना शोध आलेख प्रस्तुत किया जो **दिशाबोध** अक्टूबर-नवम्बर २०११ में प्रकाशित है। अपनी बात पूरी करते हुये उन्होंने स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के विचारों का उल्लेख किया कि निर्भीक समीक्षा, स्वस्थ विचारशीलता, सहानुभूतिपूर्ण तथ्यपरक समालोचना, सुधार प्रियता, प्रगति प्रियता, विचारोत्तेजक स्वतंत्र चेतना, सम्यक् मूल्यों का युक्तियुक्त सुरुचिपूर्ण एवं शिष्ट भाषा में प्रसार इत्यादि समयानुसार वांछित तत्व जैन पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा कभी-कभार अल्प परिमाण में ही प्राप्त होते हैं। समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा इस ओर विशेष गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना समय की मांग है।

१५ अक्टूबर को रात्रि में महासभा कार्यालय स्थित नवीन सेठी सभागार में अ. भा. जैन पत्र सम्पादक संघ की कार्यकारिणी की बैठक डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। मुख्य अतिथि महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी एवं विशिष्ट अतिथि प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन और श्री कपूर चन्द पाटनी थे। संघ के मुखपत्र **जैन सम्वाद** के प्रथम अकं का लोकार्पण भी किया गया।

ला. द. संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद

११ नवम्बर को भारत के पूर्व राष्ट्रपति भारत रत्न डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में महत्वांकाक्षी इलेक्ट्रानिक लायब्रेरी परियोजना का उद्घाटन किया। अपने भाववाही उद्बोधन में डॉ. कलाम ने कहा कि आज विश्व में मानसिकता में एकता की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि मानसिकता की एकता एवं शांति के वातावरण में ही भविष्य के जाग्रत एवं ज्ञानी नागरिकों का विकास संभव है। डॉ. कलाम ने डॉ. होमी धाला की बहुचर्चित पुस्तक Many Faces of Peace का डॉ. श्रीदेवीबेन मेहता एवं प्रो. प्रशान्त दवे कृत गुजराती अनुवाद 'शांतिना स्वरुपो' का विमोचन भी किया जिसे डॉ. जे. बी. शाह ने संपादित किया है।

भगवान महावीर के प्रति श्रद्धांजलि

लखनऊ नगर निगम द्वारा २३ अक्टूबर को प्रेस सूचना जारी की गई कि २६ अक्टूबर को **महावीर निर्वाण के दिवस (दीपावली)** पर लखनऊ नगर सीमा के अन्तर्गत समस्त **वधशालाएं एवं मांस बेचने वाली समस्त दुकानें** (मछली, मुर्गा, बकरा, भैंसा एवं सुअर) अनिवार्य रूप से **बन्द** रहेंगी। भगवान् महावीर के करुणापूरित अहिंसा सन्देश को स्मरण करने और उसे जन-जन तक पहुंचाने के शुभ कार्य के लिए लखनऊ नगर निगम के महापौर और सभी सम्बन्धित अधिकारियों के प्रति तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति तथा लखनऊ की अन्य प्रतिनिधि जैन संस्थाओं (जैन मिलन, श्री जैन धर्म प्रवर्धनी सभा, श्री दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा और श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन सभा) द्वारा आभार प्रकट किया गया। यह भी निवेदन किया गया कि ऐसी ही व्यवस्था भगवान महावीर के जन्म दिवस चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भी किया जाना अपेक्षित है।

महापौर डॉ. दिनेश शर्मा ने ७ मई को इन्दिरा नगर फैजाबाद रोड स्थित, नीलगिरि कॉम्पलेक्स के पास, चौराहे का नाम **तीर्थंकर भगवान महावीर चौराहा** रखे जाने की घोषणा की थी। **'तीर्थंकर भगवान महावीर चौराहा'** का विधिवत् लोकार्पण महापौर द्वारा १२ नवम्बर को किया गया। इस अवसर पर उन्होंने भगवान महावीर के बताये अहिंसा और समता भाव के मार्ग पर चलने की शिक्षा भी दी।

भगवान महावीर के करुणापूरित सन्देश का प्रभाव भारत के बाहर भी दीख पड़ा। ७ नवम्बर को बकरीद थी। उसके पहले **जागरण** दिनांक ३१ अक्टूबर में प्रसारित समाचार से यह विदित हुआ कि बीना अहमद और फराह खान ने पश्चिमी देशों में बसे एशियाई मुसलमानों के वेबसाइट गॉटमिल्कब्लॉग पर लिखा है कि 'मुसलमानों का धार्मिक और सांस्कृतिक रूप में कर्तव्य है कि वैज्ञानिक और नैतिक प्रगति को हासिल करें। ईद-उल-अजहा का महत्व हमेशा बना रहेगा, लेकिन आज के समय में हमें चीजों को व्यावहारिक ढंग से देखना चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि मुसलमानों को पशुओं की कुर्बानी के समय उनके साथ की जाने वाली क्रूरता पर भी विचार करना चाहिए। इन्हें भी अल्लाह ने ही बनाया है। जानवरों को खाने के लिए पालने से पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचता है। गोश्त का सेवन इंसान के स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद नहीं होता। यही नहीं, इस्लाम में गोश्त के सेवन की आवश्यकता पर कुछ नहीं कहा गया है, इस पर भी गौर करने की जरूरत है। मुसलमानों का

यह कर्त्तव्य है कि वह बकरीद के मौके पर जानवरों के बलिदान की प्रथा को खत्म करने में योगदान दें'।

कराची में पशुओं के कल्याणार्थ कार्य करने वाली संस्था ने भी लोगों से अपील की है कि इस साल बकरे की बलि देने के बजाए एक बकरी खरीदें और उन लोगों को दान में दें, जो गरीब हैं। बकरी के दूध और उससे बने घी को बेचकर होने वाली आमदनी से परिवार का पालन-पोषण आसानी से हो सकता है।

- नलिन कान्त जैन

शोक संवेदन

ललितपुर में अध्यात्मतत्त्वरसिक विद्वद्वर्य श्रीमान् चम्पालाल जी जैन पटवारी दिनांक १४ अगस्त २०११ को ६२ वर्ष की अवस्था में अनवरत धर्मध्यान पूर्वक प्रशान्त परिणामों से इस नश्वर मनुष्यदेह को त्याग कर सुगति में प्रयाण कर गए।

सागर में श्रीमंत सेठ डालचन्द जैन (पूर्व सांसद) का देवप्रयाण दिनांक २५ सितम्बर रविवार को हो गया है। वह **शोधादर्श** के सुधी पाठक और प्रशंसक थे।

श्रीमती द्रोपदी देवी (पत्नी ब्र. जयप्रकाश जैन) की सल्लेखना (समाधि) ललितपुर में दिनांक ५ अक्टूबर को सानंद सपन्न हुई।

७१ वर्षीय कविवर ओमप्रकाश डाँगी 'पारदर्शी' का स्वर्गवास दिनांक १२ अक्टूबर को उदयपुर में हो गया। संकल्पानुसार देहदान आर.एन.टी. मेडिकल कॉलेज, उदयपुर में किया गया। **शोधादर्श** से उनका अनुराग था।

हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप के पीठाधीश पद पर आसीन रहे मुनि श्री मोतीसागर जी की समाधी दिनांक १० नवम्बर को हो गई।

उपरोक्त सभी महानुभावों के प्रति शोधादर्श परिवार अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, दिवंगत आत्माओं की चिरशांति और सद्गति के लिए प्रार्थना करता है और शोक संतप्त परिवारजनों एवं मित्रवर्ग के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

अभिनन्दन

६ अगस्त २०११ को टीकमगढ़ के युवा नेता समाजसेवी श्री पवन घुवारा को भगवान पारसनाथ का निर्वाण दिवस पर तीर्थक्षेत्र नैनागिरि छतरपुर म.प्र. में प्रतिभा सम्मान समारोह में, उनके अभूतपूर्व सामाजिक कार्यों को लेकर उन्हें 'भूमिपुत्र' की संज्ञा से सुशोभित किया गया।

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, मानव संसाधन विकास मंत्रालयाधीन मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की प्रथम महिला कुलपति का प्रभार प्रो. डॉ. शशिप्रभा जैन को दिया गया है। विद्यापीठ के शिक्षा शास्त्र विभाग की आचार्या प्रो. जैन पिछले ४४ वर्षों से शिक्षा जगत में अध्यापन कार्य कर रही हैं।

१५ अगस्त को महामहिम राष्ट्रपति द्वारा मानव संसाधन मंत्रालय की ओर से प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. प्रभाचन्द्र शास्त्री, सोलापुर को वर्ष २०११ का महर्षि बादरायण व्यास सम्मान प्रदान किये जाने की घोषणा की गई है।

श्री सुभाष मुनि जी को उनके शोध प्रबन्ध 'जैन परंपरा में दलितोद्धारः एक समीक्षात्मक अध्ययन' पर जैन विश्व भारती विश्व विद्यालय लाडनूं द्वारा पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

२५ सितम्बर को जैन मिलन लखनऊ द्वारा 'शाकाहार, सदाचार तथा व्यसनमुक्ति' की त्रिसूत्री को समर्पित पुणे के डॉ. कल्याण मोतीलाल जैन गंगवाल को 'विश्व मैत्री सेवा सम्मान २०११' से सम्मानित किया गया।

३१ अक्टूबर को खोजी पत्रकारिता के लिये प्रतिष्ठित और जैन संस्कृति रक्षा के लिये संघर्षरत श्री मिलापचन्द्र डांडिया का जीवन में ८० वसन्त देखने और सफल पत्रकारिता व्यवसाय की षष्ठिपूर्ति के उपलक्ष में जयपुर में भावभीना अभिनन्दन किया गया। **समन्वय वाणी** के 'सहस्र चन्द्र विशेषांक' में उनके जीवन और कृतित्व पर विशद प्रकाश डाला गया है।

प्रो. फूलचन्द्र जैन प्रेमी ने दिल्ली के प्राच्य विद्या के संस्थान भोगीलाल लहरचन्द इन्स्टीट्यूट आफ इन्डालाजी में निदेशक का पद भार ग्रहण किया।

मैनपुरी में डॉ. सुशील जैन द्वारा स्थापित वाग्भारती ट्रस्ट द्वारा डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन, रुद्रपुर, पं. श्री शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी, प्रो. मालती जैन, कुरावली- मैनपुरी और डॉ. वृषभप्रसाद जैन, लखनऊ को वाग्भारती पुरस्कार से सम्मानित करते हुये धर्मगौरव की उपाधि से अलंकृत किया गया।

उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यशवृद्धि के लिए शोधादर्श परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है।

पाठकों के पत्र

श्री अमरनाथ, लखनऊ

शोधादर्श- ७३ मिला। डॉ. शशि कान्त जैन जी का आलेख Interpreting the Ancient Epigraphs of India चमत्कृत कर गया। शिलालेखों पर इतनी विस्तृत एवं ज्ञानवर्धक सामग्री यदाकदा ही पढ़ने को मिलती है। इस आलेख के लिए उन्हें सादर साधुवाद। श्री सचिन्द्र शास्त्री जी का आलेख 'प्रजातंत्र में सहअस्तिव' भी ज्ञानवर्धक है। श्रीमती शेफाली मित्तल की कहानी 'बिखरते सपने' वर्तमान में घर-घर की कहानी है। सारे दोष बहू में ही होते हैं, यही सोच घरेलू झगड़ों की जड़ है। वास्तव में बहुत ही सारगर्भित अंक है यह, कृपया मेरा साधुवाद स्वीकारें, प्रणाम भी।

डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श का ७३वां (जुलाई २०११) अंक भी स्तरीय रचनाओं का महत्वपूर्ण संकलन है। 'प्रजातंत्र में सहअस्तित्व की उपयोगिता' (श्री सचिन्द्र शास्त्री) एक समाजोपयोगी लेख है। इसमें प्रतिपादित विषय है कि सह-अस्तित्व के पालन से प्रजातंत्र की जड़ें मजबूत होती हैं। 'एकान्तवाद एवं स्वच्छन्दता अनुचित' (श्री ललित कुमार नाहटा) गंभीर एवं विचारोत्तेजक रचना है। जैन समाज के सुधार में जैन अनुयायी की ही विचारणा है। इस पर समस्त जैन समाज को गंभीरता से चिन्तन-मनन और आत्म-विश्लेषण करना चाहिए। 'बिखरते सपने' (श्रीमती शेफाली मित्तल) मार्मिक कहानी है। ससुराल में बहू की प्रतारणा एक जाना-माना प्रसंग रहा है, किन्तु मेरा विचार है कि शिक्षा के प्रभाव से ऐसे बिम्ब अब अपेक्षतया कम होते जा रहे हैं।

इस अंक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञानवर्द्धक तथा मार्गदर्शक आलेख डॉ. शशि कान्त का है- **Interpreting the Ancient Epigraphs of India**। इसमें भारतीय अभिलेखों के इतिहास और उनके अध्ययन-प्रकाशन का समग्र ब्योरा अभिलेखों का अध्ययन करने वाले किसी भी शोधार्थी छात्र के लिए मूलभूत सामग्री प्रदान करता है। भदन्त, अन्तेवासी, स्थविर, ब्राह्मण-श्रमण, आयागपट, सिद्धम्, नन्दि, लेण, गुफा/गुम्फा, पोढ़ी, पसादो आदि अभिलेखों में प्रयुक्त कतिपय ऐसे शब्द हैं जिनको इतिहास के सही परिप्रेक्ष्य में जानना आवश्यक है तभी किसी अभिलेख का सही ज्ञान संभव है। इस आलेख में उपर्युक्त शब्दों का वास्तविक अर्थ बताया गया है। इनमें कुछ शब्द जैन

तथा बौद्ध धर्म विषयक सामग्री के समाधान में तभी सहायक हैं जब उनके सही अर्थ और उनसे सम्बन्धित धर्म या संप्रदायों का सम्यक् ज्ञान हो। भारतीय अभिलेखों का सर्वप्रथम उद्वाचन और अनुवाद विदेशी विद्वानों ने किया जो भारतीय संस्कृति के उपर्युक्त कतिपय शब्दों के यथार्थपरक अर्थ तथा उनके विशिष्ट साम्प्रदायिक सम्बन्ध से अपरिचित थे और भारतीय विद्वानों ने उनके तथ्यात्मक भावों तक न जाकर केवल पूर्ववर्ती विचारों को ही मान लिया। डॉ. शशि कान्त ने जिन शब्दों के यथार्थ भाव की चर्चा की है निःसन्देह उससे अभिलेखीय ज्ञान का यथार्थ प्रकट होगा। इतना ही नहीं, उनके द्वारा प्रतिपादित मार्ग के अनुसरण से भविष्य में मिलने वाले अभिलेखों का सही भाव-निरूपण संभव हो सकेगा। इस आवश्यक और महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश के लिए डॉ. शशि कान्त बधाई के पात्र हैं। इस अंक में छपी श्री अमरनाथ की कविता 'सागर और कूप' प्रभावोत्पादक रचना है, उन्हें भी बधाई। अंत में अंक के सम्पादक को साधुवाद। पत्रिका से जुड़े सभी संभ्रान्त सदस्यों तथा रचनाकारों को नवागत वर्ष २०१२ की हार्दिक मंगल कामनाएं।

श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर

शोधादर्श का ७३ वां अंक आद्योपान्त पठनीय ही नहीं, मननीय है। जैन जनमानस के धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने में इस चातुर्मासिक पत्रिका का योगदान प्रशंसनीय है। उसके उत्तरोत्तर संवर्धन के लिए सम्पादक मण्डल का अनवरत प्रयास सराहनीय है। इतिहास-मर्मज्ञ वयोवृद्ध विद्वान डॉ. शशि कान्त जैन का लेख Interpreting the Ancient Epigraphs of India उनकी ऐतिहासिक एवं गवेषणात्मक प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। Iconography के उद्भट विद्वान डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव का लेख 'ऐलोरा की देवी प्रतिमा- इन्द्राणी या अम्बिका' अत्यन्त उच्चकोटि का है। मैं इस पत्रिका के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।

श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

शोधादर्श का अंक ७३ अच्छी ज्ञानवर्धक साहित्य सामग्री के ओतप्रोत है। गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत श्री रमा कान्त जैन के लेख 'श्री द्यानतराय' में अच्छी जानकारी दी गई है। तात्कालिक परिस्थितियों एवं उस समय की साहित्यिक विचार धारा के साथ कवि द्यानतराय का परिचय और साहित्यिक उद्धरण सभी मनोहर हैं।

इससे ज्ञात होता है कि कवि द्यानतराय का काव्य विविध विषयी था। डॉ. ए० एल० श्रीवास्तव का लेख ''ऐलौरा की देवी प्रतिमा इन्द्राणी या अंबिका' भी अच्छा है। श्री अमरनाथ की कविता ''सागर और कूप'' भाव भूमि पर अच्छी है। अन्य कवितायें भी अच्छी हैं।

श्री पुखराज जैन, अध्यक्ष, पावानगर सिद्धक्षेत्र समिति, गोरखपुर

तीर्थक्षेत्र पावानगर में भगवान महावीर के मंदिर के निर्माण हेतु भगवान महावीर इण्टर कालेज प्रबन्ध समिति पावानगर (फाजिलनगर, जिला-कुशीनगर) द्वारा वर्ष १९७१-७२ में जमीन उपलब्ध करायी गयी थी। उस समय एक कमरे में भगवान महावीर की मूर्ति स्थापित की गयी। कालान्तर में भगवान महावीर निर्वाण सिद्ध क्षेत्र पावानगर पर १४ कमरों की धर्मशाला का निर्माण कराया गया। भव्य जैन मंदिर का निर्माण वर्ष १९९०-९१ में समिति द्वारा कराया गया जिसका पंचकल्याणक महोत्सव वर्ष १९९४ में संहिता सूरि ब्र. बाबा श्री सूरजमल जी निवाई वाले तथा पं. लाड़ली प्रसाद जैन, सवाइमाधोपुर वाले, के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के समय राज्य सरकार द्वारा भगवान महावीर महाविद्यालय को मान्यता प्रदान की गयी एवं भारत सरकार पर्यटन विभाग द्वारा वर्ष १९९५-९६ में दो भव्य गेट मूर्ति सहित एवं चाहर दिवारी का निर्माण करा कर पर्यटन केन्द्र की मान्यता प्रदान की गयी।

श्री बी. डी. अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श का ७३ वां अंक मैने आद्योपान्त पढ़ा है। रचनायें खोजपूर्ण, श्रमसाध्य व ज्ञानवर्धक हैं। भाई शशि कान्त का 'Ancient Epigraphs of India' विषयक लेख पढ़कर विशेष प्रसन्नता हुई। अथक परिश्रम से तैयार किया गया यह लेख अत्यन्त प्रशंसनीय है। 'ज्योति निकुंज' सदैव विद्वानों का निकुंज बना रहे यही मेरी अभिलाषा है।

आयुष्मति तन्वी की सफलता का समाचार पाकर हृदय गद्‌गद् हो गया। आशा है भविष्य में भी उसका कीर्तिमान ऐसा ही रहेगा। प्रिय तन्वी को आशीर्वाद।

शोधादर्श पर ४०४८६/- रुपया व्यय हुआ। इसके विपरीत प्राप्ति ६९४२/- रुपये नगण्य है। प्राप्ति बढ़ाने की आवश्यकता है।

श्री एम.पी. जैन, उज्जैन

शोधादर्श द्वारा अति उत्तम कार्य किया जा रहा है जो पूरे जैन समाज के लिये ही नहीं वरन् जैन संस्कृति के लिये भी स्तुत्य है।

श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश', लखनऊ

अध्यात्म, मानवीय मूल्यों एवं प्रातः स्मरणीय तीर्थंकर महावीर के महान संदेशों के प्रसार एवं प्रचार को समर्पित **शोधादर्श** पत्रिका निश्चय ही अभिनन्दनीय प्रयास है। आपके विद्वतापूर्ण मार्ग दर्शन एवं सम्पादन मंडल द्वारा सफल सम्पादन के लिए कोटिशः साधुवाद।

श्री विष्णुदत्त शर्मा, लखनऊ

श्री रमा कान्त जैन का 'गुरुगुण कीर्तन : कविवर-श्री द्यानतराय' मेरे मन को छू गया। स्व. श्री रमा कान्त जी मेरे मित्र ही नहीं मेरे मार्गदर्शक भी थे। मैं कोई भी लेख लिखता था तो उन्हें अवश्य पढ़ाता था। रमा कान्त जैन के इस लेख ने उनकी पैनी दृष्टि और कवि विवेचना की विपुल साधना का परिचय दिया है। इससे मैं उन्हें महान साहित्यकार महावीर प्रसाद द्विवेदी की श्रेणी में रखता हूं। आप प्रशंसनीय पत्र **शोधादर्श** का सही सम्पादन कर रहे हैं।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

प्रबन्ध समिति

(१ जनवरी २०१० को सर्वसम्मति से निर्वाचित)

अध्यक्ष	श्री लूण करण नाहर जैन
उपाध्यक्ष	श्री नरेश चन्द्र जैन
महामंत्री	श्री नलिन कान्त जैन
संयुक्त मंत्री	डॉ. विनय कुमार जैन
उपमंत्री	श्री महेन्द्र प्रसाद जैन, श्री रोशनलाल नाहर
कोषाध्यक्ष	श्री बिजय लाल जैन
सदस्य प्रबन्ध समिति	डॉ. शशि कान्त, श्री सन्दीप कान्त जैन, श्री रोहित कुमार जैन, श्री धनेन्द्र कुमार जैन, श्री आदित्य जैन, श्री दीपक जैन, श्री अजय कुमार जैन कागजी, श्री अंशु जैन 'अमर' श्री राकेश कुमार जैन, श्री हंसराज जैन

प्रकाशन

भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ	सं. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	50/–
Bhagwan Mahavira: **Life, Times & Teachings**	**by Dr. Jyoti Prasad Jain**	**5/-**
Way to Health & Happiness - **Vegetarianism**	**by Dr. Jyoti Prasad Jain**	**4/-**
Mysteries of Life & Eternal Bliss	**by Prof. Anant Prasad Jain**	**7/50**
जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य	लेखक प्रो. अनन्त प्रसाद जैन	7/50

पांचों प्रकाशन मात्र रु. 70/– में प्राप्त किये जा सकते हैं। मूल्य लखनऊ में देय चेक या ड्राफ्ट द्वारा 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम महामंत्री को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004 के पते पर भेजा जाय।

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क ६० रु. (साठ रुपये), 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४', को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क २५ डालर है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की *दो प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक